

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यं जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३

जून २००९ (४, ५ जुलाई को प्रेषित)

अंक-१०

संस्थापक-संरक्षक

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी)
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

सम्पादक

आचार्य दिवाकर शर्मा

220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001
दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

सहसम्पादक

डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'

डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001
दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755

प्रबन्ध सम्पादक

श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल

सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001
0120-2756891, मो०- 09810949921

सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं)

डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779

श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989

श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379

श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338

श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852

डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :

श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,

पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331

0-07670-265478, 05198- 224413

वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग

रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)

दूरभाष-01334-260323

श्री गीता ज्ञान मन्दिर

भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)

दूरभाष-0281-2364465

पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता

आचार्य दिवाकर शर्मा,

220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001

दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (५०)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८१)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	जय राधा गोविन्द जू	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१०
५.	भारत को गारत होने से बचाओ	डॉ० उन्मेष राघवीय	१३
६.	सच्ची भक्ति	शिवकुमार गोयल	१४
७.	श्रीरामकथा की प्रासंगिकता	श्रद्धेय चन्द्रबली 'हंस'	१५
८.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम	प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी	१८
९.	श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में १००८.....	-	१९
१०.	भागवत सप्ताह विवरणिका	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	२०
११.	सादरमभिनन्दनम्	-	२२
१२.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	२३
१३.	कालिका दशकम्	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	२५
१४.	समदर्शी बनो समवर्ती नहीं	परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज	२६
१५.	यह दाग मिटाना ही होगा	प्रस्तुति-डॉ० उन्मेष 'राघवीय'	३१
१६.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में **'पूज्यपाद जगद्गुरु जी'** का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

आदर्श गुरु शिष्य परम्परा स्थापित हो

भारतीय संस्कृति में महर्षि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास का पावन नाम बहुत सम्मान और कृतज्ञता के साथ लिया जाता है। कारण सर्वविदित है कि भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों की लीलाओं का वर्णन इन श्रीचरणों ने इतनी प्रामाणिकता और व्यापकता के साथ किया है कि कोई भी आस्तिक जन इनको दण्डवत् किये बिना रह नहीं सकता। गुरु परम्परा में जहाँ अनेक आचार्यों-संतों तथा वन्दनीय चरणों को प्रणाम किया जाता है वहीं महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास जी महाराज को उनके प्राकट्य पर्व आषाढी पूर्णिमा के दिन सभी शिष्य प्रणाम निवेदित करते हैं। व्यास पूर्णिमा, व्यास पूजा, गुरु पूर्णिमा आदि नामों से पुकारे जाने वाला यह पुण्यपर्व हिन्दु जनता जनार्दन में बहुत श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है। मनाया जाना भी चाहिए क्योंकि कृतज्ञता ज्ञापित करना भारतीय परम्परा है। जिन गुरुचरणों की करुणा में स्नान करके शिष्यगण भगवदीय भावों में खो जाते हैं, ज्ञान तत्त्व का दर्शन करके अपना जीवन सफल करते हैं, भक्तिस्वरूपा भगवती को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं उन श्रीचरणों के प्रतिवर्ष में केवल एक दिन कुछ पत्र पुष्प अर्पित करना कृतज्ञता ही है। यही कृतज्ञता साधक को सिद्धेश्वर का शुभाशीर्वाद प्राप्त कराती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि आज शास्त्रविरोधी, संस्कारशून्य, मर्यादाहीन, ज्ञानतत्त्व से सूदूर और गुरुडम सिखाकर जनता को भ्रमित करने वाले गुरुओं की बाढ़ सी आई हुई है। ये तथाकथित गुरु अपने को ही पुजवाने की शिक्षा देते हैं भगवान् को भूल जाने की इनकी भभूत ने परिवारों समाज तथा राष्ट्र की शान्ति भंग कर रखी है। न कोई मर्यादा और न कोई संस्कार फिर भी पूजने पुजवाने का चला प्रचार पक्ष दोनों ही कमजोर हैं गुरु चाहते हैं हमारे भण्डार भरते रहें और हम अधिक से अधिक शिष्यों पर शासन करें। उधर शिष्य चाहते हैं गुरु से हमें आशीर्वाद मिलते रहें, ये वही करें जो हम कहें इनकी बातें मानना हमारे लिए अनिवार्य नहीं। हमें गुरु से धन दौलत मिलती रहे। राम के नाम की तो चर्चा-अर्चा कोसों दूर रहती है। ऐसे दोनों गुरुशिष्यों से आज वातावरण दूषित हो गया है। धर्माचरण न होने से और दुराचरण अधिक होने से गुरुपूर्णिमा जैसे पर्वों की मूलभावना लुप्तप्राय है। विवेकी महानुभावों को इस आपातकाल से स्वयं बचकर प्रेम से दूसरों को भी बचाना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण की निम्नलिखित आज्ञा का पालन करना सभी नित्य कर्तव्य होना चाहिए-

यः शास्त्रं विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न पराङ्मतिम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रों में निर्दिष्ट विधियों को छोड़कर मनमाने आचरण की दलदल में धंसा रहता है वह न तो सिद्धि और सुख प्राप्त करता है और न ही परमगति को प्राप्त करता है। श्रुति स्मृति भगवदीय आज्ञाएँ हैं इनका पालन करना प्रत्येक मानव का प्रथम कर्तव्य है।

आशा है गुरु शिष्यों के इस देश में ऐसे आदर्श पुनः प्रकट होंगे जो मानव इतिहास के पुरुषपुंगव बन सकें। साथ ही गुरुडमों से बचकर सच्चे अर्थों में गुरु शिष्य परम्परा पुनः स्थापित होगी।

नमो राघवाय।

आचार्य दिवाकर शर्मा

प्रधान सम्पादक

वाल्मीकिरामायण सुधा (५०)

(गतांक से आगे)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए महाबाहु बलवान श्रीराम ने खेल-खेल में दुन्दुभी राक्षस के शरीर को अपने चरण के अंगूठे से उठाकर दस योजन दूर फेंक दिया। इसी प्रकार जब सुग्रीव ने एक ही बाण से सात ताल के वृक्षों को भेदने की प्रार्थना की तो श्रीरघुनाथ का बाण-

सायकस्तु मुहूर्तेन सालान् भीत्वा महाजवः।

निष्पत्य च पुनः तूर्णं तमेव प्रविवेश ह॥

एक ही क्षण में सबका भेदन करके वह वेगशाली बाण पुनः श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गया। यह देखकर वानरराज सुग्रीव को बड़ा विस्मय हुआ।

स मूर्ध्ना न्यपतद् भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः।

सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः॥

सुग्रीव ने हाथ जोड़कर पृथ्वी पर माथा टेक दिया और श्रीराम को साष्टांग प्रणाम किया और नम्रता पूर्वक श्रीराम से कहा-

सेन्द्रानपि सुरान् सर्वान् त्वं बाणैः पुरुषर्षभ।

समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्बालिनं प्रभो॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! भगवन्! आप तो निजबाणों से समरभूमि में इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं का वध करने में समर्थ हैं फिर बालि को मारना आपके लिए कौन बड़ी बात है।

येन सप्त महासाला गिरिभूमिश्च दारिताः।

वाणैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः॥

हे काकुत्स्थ! जिन्होंने बड़े-बड़े ताल वृक्ष पर्वत, भूमि को एक बाण से विदीर्ण कर डाला ऐसे आपके सामने युद्धभूमि में कौन ठहर सकता है। ऐसा कहते हुए सुग्रीव ने भगवान श्रीराम से बालि का वध करने की प्रार्थना की।

ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।

प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः॥

सुग्रीव की बात सुनकर महाप्राज्ञ भगवान श्रीराम ने सुग्रीव को गले से लगा लिया और सुग्रीव से बालि को युद्ध में ललकारने के लिए कहा। सुग्रीव की ललकार सुनकर बालि क्रोध में भरकर बड़े वेग से घर से निकला।

ततः सुतुमुलं युद्धं बालिसुग्रीवयोरभूत्।

गगने ग्रहयोर्घोरं बुधांगरकयोरिव॥

तब बालि और सुग्रीव में बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया मानों आकाश में बुध और मंगल इन दोनों ग्रहों में घोर संग्राम हो रहा हो। दोनों एक दूसरे पर वज्र के समान घूसों और तमाचों का प्रहार कर रहे थे। उसी समय भगवान श्रीराम ने दोनों को घोर युद्ध करते हुए देखा। वे दोनों अश्विनीकुमारों की भाँति परस्पर मिलते जुलते दिखाई दिये। इसी कारण उन्होंने अपना प्राणांतक बाण नहीं छोड़ा। बालि ने सुग्रीव को लहूलूहान कर दिया और सुग्रीव जैसे तैसे प्राण बचाकर मतंग मुनि के महावन में घुस गए। बालि श्राप के भय से वहाँ नहीं गया तभी भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान जी के साथ वहाँ आ गए। सुग्रीव के कहने पर भगवान श्रीराम ने कहा कि मुझे स्वर, दृष्टि, पराक्रम में तुम दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखा अतः मैंने शत्रुनाशक बाण नहीं छोड़ा। इस बार तुम अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो जिससे द्वन्द्व युद्ध में प्रवृत्त होने पर मैं तुम्हें पहचान सकूँ। समीप ही गजपुष्पी लता देखकर भगवान श्रीलक्ष्मण जी से बोले लक्ष्मण! यह लता उखाड़कर सुग्रीव के गले में पहना दो। तदनन्तर सुग्रीव पुनः

श्रीरघुनाथ जी के साथ बालि से युद्ध करने
किष्किन्धापुरी जा पहुँचे।

ततः स जीमूत कृतप्रणादो
नादं ह्यमुञ्चत् त्वरया प्रतीतः।
सूर्यात्मजः शैर्यविवृद्धतेजाः
सरित्पतिर्वानिल चंचलोर्मिः॥

ततपश्चात् सुग्रीव भयंकर गर्जना करने लगे मानो
वायु के वेग से चंचल हुई उत्तालतरंग मालाओं से
नदियों का स्वामी समुद्र कोलाहल कर रहा हो। सुग्रीव
की गर्जना सुनकर बालि को बहुत क्रोध आया और-

शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः।
वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम्॥

दुःसह शब्द सुनकर बालि अपने पैरों की धमक
से पृथ्वी को विदीर्ण सा करता हुआ बड़े वेग से बाहर
निकला। उस समय बालि की पत्नी तारा भयभीत हो
उठी और बालि से कहने लगी-

त्वया तत्र निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः।
इहैत्य पुनराह्वानं शंकां जनयतीव मे॥

आपके द्वारा पराजित और पीड़ित होने पर भी
सुग्रीव यहाँ आकर आपको युद्ध के लिए ललकार
रहे हैं उनका पुनरागमन मेरे मन में शंका सी उत्पन्न
कर रहा है। उनकी गर्जना में जो उत्तेजना है इसका
कोई सामान्य कारण नहीं होना चाहिए। मेरे विचार
से-

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति॥

सुग्रीव किसी प्रबल सहायक के बिना यहाँ नहीं
आये हैं। उसी के बल पर वे इस तरह गरज रहे हैं।
एक दिन कुमार अंगद वन में गये थे वहाँ गुप्तचरों ने
उन्हें बताया कि अयोध्यानरेश के दो शूरवीर पुत्र जो
श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं यहाँ वन में
आये हुए हैं।

सुग्रीव प्रियकामार्थे प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
ते तु भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रण कर्मणि॥

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।

निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥

वे दोनों दुर्जय वीर सुग्रीव का प्रिय करने के
लिए उनके पास पहुँच गये हैं। उन दोनों में से जो
आपके भाई के युद्धकर्म में सहायक बताये गये हैं वे
श्रीराम शत्रुसेना का संहार करने वाले तथा प्रलयकाल
में प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी हैं। वे साधु
पुरुषों के आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं और संकट में पड़े
हुए प्राणियों के लिए सबसे बड़े सहारे हैं।

आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥

वे आर्त पुरुषों के आश्रय, यश के एकमात्र
भजन, ज्ञानविज्ञान से सम्पन्न तथा पिता की आज्ञा में
स्थित रहने वाले हैं। उन राम के साथ विरोध करना
उचित नहीं है।

शूर वक्ष्यामि ते किञ्चिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्।

श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद् हितम्॥

हे शूरवीर! मैं आपसे वही कह रही हूँ जो आपके
लिए हितकर है। आप उसे सुनिये और वैसा ही कीजिए-

यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय।

विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा॥

अच्छा यही होगा कि आप सुग्रीव को युवराज
पद पर अभिषिक्त कर दीजिए। सुग्रीव आपके छोटे
भाई हैं उनके साथ युद्ध न कीजिए।

दानमानादि सत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्।

वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु॥

आप दान मान सत्कामादि के द्वारा सुग्रीव को
अपना अन्तरंग बना लीजिए जिससे वे इस बैर भाव
को छोड़कर आपके पास रह सकें। इस समय भ्रातृप्रेम
का सहारा लिए बिना आपके लिए दूसरी कोई गति
नहीं है। उस समय तारा ने बालि से उसके हित की
बात कही किन्तु तारा की बात बालि को अच्छी नहीं
लगी क्योंकि उसके विनाश का समय निकट था

और वह काल के पाश में बँध चुका था। बालि सुग्रीव के पास आया दोनों का घनघोर युद्ध हुआ और दोनों भयंकर गर्जन करते हुए एक दूसरे को डाँट रहे थे।

हीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरम्।

प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः॥

भगवान ने देखा सुग्रीव हार रहे हैं। बालि ने सुग्रीव को गिरा दिया और छाती पर चढ़कर बोला तेरा जो सहायक हो आ जाये। बालि ने राम जी को ललकारा। राम जी सामने खड़े और प्रत्यक्षदर्शी वानरों ने बताया कि राम जी के साथ बालि का घोर युद्ध भी हुआ। बालि ने भगवान राम पर बड़े बड़े वृक्ष फेंके सारे वृक्षों को राम जी ने काट दिया। बड़ी बड़ी शिलाएँ फेंकी श्रीराम ने सारी शिलाएँ काट दीं। तब भगवान श्रीराम ने-

ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम्।

पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः॥

अपने धनुष पर विषधर सर्प के समान भयंकर बाण रखा और उसे जोर से खींचा मानो यमराज ने कालचक्र उठा लिया हो।

तस्य ज्यातलघोरेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः।

प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः॥

धनुष की प्रत्यंचा की टंकार ध्वनि से भयभीत होकर मृग तथा पक्षी भाग खड़े हुए। वे प्रलयकाल के समय मोहित हुए जीवों के समान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। फिर बाण का सन्धान करके भगवान राम ने एक बाण खींचकर-

बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि।

मारा बाली राम तब हृदय माझ शर तानि॥

हृदय में एक बाण के लगते ही बालि मर गया। कौन मूर्ख कहता है कि भगवान राम ने छिपकर बालि को मारा। गोस्वामी जी ने भी कहा है-

विटप ओट देखहिं रघुराई यहाँ ओट का अर्थ टेक अर्थात् सहारा है न कि छिपना। बालि नीचे गिरा हाहाकार मच गया। इन्द्र की दी हुई माला के कारण बालि के प्राण नहीं जा रहे हैं अन्यथा उसी समय प्राणान्त हो जाता। धीरे धीरे बालि श्रीराम जी को देख रहा है-

परा विकल महि शर के लागे।

पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥

श्याम गात सिर जटा बनाए।

अरुन नयन शर चाप चढाए॥

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा।

सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥

हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा।

बोला चितइ राम की ओरा॥

सुन्दर श्यामल शरीर, शिर पर जटा, लाल नेत्र, धनुष बाण सँभाले हुए राम जी के चरणों को बालि ने बार बार देखा और जान लिया कि ये भगवान हैं। धीरे धीरे भगवान श्रीराम और लक्ष्मण बालि के पास पहुँचे। उन्हें देखकर बालि धर्म और विनय से युक्त वाणी में बोला। बालि की वाणी में तीन प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। सुनने वाले कह रहे हैं कि कठोर है। बालि कह रहा है कि मेरी वाणी विनयपूर्ण है और सरस्वती जी कह रही हैं कि बालि की वाणी धर्मसम्मत है। हृदय में प्रेम के कारण बालि के वचन विनय से पूर्ण हैं वानर होने के कारण मुख से कठोर वचन हैं और राम जी की ओर देख रहा है तो वचन धार्मिक भी हैं। राघव! मैं आपसे कुछ प्रश्न करूँ?

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं।

मारेहु मोहि व्याध की नाई॥

मैं बैरी सुग्रीव पियारा।

कारण कवन नाथ मोहि मारा।

आपने मुझे किस कारण मारा क्या प्रभु आप बता सकेंगे?

पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः।

यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः॥

आज बालि की अवधारणा बड़ी निर्मल हो गई है। बालि एक बात बहुत स्पष्ट जानता है श्री रामचन्द्र परमात्मा हैं। यदि वे किसी को मरवाना चाहेंगे तो उन्हें स्वयं आने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब उनमें यह सामर्थ्य है कि तिनके को वज्र और वज्र को तिनका बना सकते हैं तो क्या वे सुग्रीव में वह बल नहीं दे सकते थे कि जिससे सुग्रीव बालि को मार डालता बालि को मारने का बल भी भगवान श्रीराम सुग्रीव को दे सकते थे। आप एक कल्पना कीजिए कि जब शेषनारायण को पृथ्वी के धारण का सामर्थ्य भगवान ने दे दिया, जब ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना का सामर्थ्य भगवान ने दे दिया, जब नारायण को जगत के पालन का सामर्थ्य दे दिया, जब शिव जी को सारे जगत के संहार का सामर्थ्य दे दिया भगवान राम ने तो क्या सुग्रीव को बालि के मारने का सामर्थ्य नहीं दे सकते थे? इस पर हम क्यों नहीं विचार करते? जब विनयपत्रिका में यह वाक्य कहा जा सकता है कि-

जेहि विधिहिं विधिता हरिहिं हरिता
शिवहिं पुनि शिवता दई।
सो जानकीपति मधुर मूरति
मोदमय मंगलमयी।

महाभारत में आपने एक प्रसंग सुना होगा कि जब भीमसेन ने दुःशासन को पटक दिया और दुःशासन की भुजा उखाड़ने का निर्णय कर लिया उस समय भीमसेन ने दोनों सेनाओं से कहा कि जिसको भी दुःशासन की रक्षा करने का मन हो, आज आये मैं दुःशासन के साथ दुःशासन के रक्षक को भी चुनौती दे रहा हूँ। और सब तो चुप रहे परन्तु अर्जुन से चुप नहीं रहा गया। अर्जुन ने गाण्डीव उठा

लिया तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा क्या बात है अर्जुन? अर्जुन ने कहा भैया ने दोनों सेनाओं को चुनौती दी है मैं जाऊँगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन! इस समय भीमसेन वह भीमसेन नहीं है। इस समय मैंने भीमसेन को वह बल दे रखा है जिस बल से मैंने हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को फाड़कर फैक दिया था। इस समय भीमसेन में साधारण बल नहीं है। तो क्या वह बल इनको (सुग्रीव को) नहीं मिल सकता था? क्यों भगवान राम बालि को मार रहे हैं? इसका सीधा सा अर्थ है कि भगवान दूसरों को सब कुछ दे सकते हैं पर एक ऐसा व्यक्तित्व है जो दूसरों को नहीं दिया जा सकता वह भगवान में ही रहेगा। वह है भवबन्धन मुक्तिदान। भवबन्धन से मुक्ति देना केवल भगवान के वश का है और किसी के वश का नहीं है। उसे कोई उधार नहीं ले सकता। मोक्ष केवल भगवान दे सकते हैं, परमपद केवल भगवान दे सकते हैं वह उनकी प्रकृति है। जैसे सूर्यनारायण के अतिरिक्त कोई प्रकाश नहीं दे सकता, जैसे चन्द्र के अतिरिक्त कोई शीतलता नहीं दे सकता, जैसे जल के अतिरिक्त कहीं मधुरता नहीं आ सकती इसी प्रकार मुक्तिदान भगवान का असाधारण धर्म है। वह कहीं अन्यत्र जा ही नहीं सकता। इसलिए बालि ने कहा कि मैं समझ गया कि आपको मुझे मारने से क्या मिला? कुछ भी तो नहीं मिला। मैं लड़ रहा था दूसरे से और आपने मुझे मारा। आपको यदि मरवाना ही था तो मुझे सुग्रीव से मरवा सकते थे। पर आप जानते थे कि बालि इतना बड़ा पापी है कि सुग्रीव के मारने से मर तो जायेगा पर इसको मोक्ष नहीं मिलेगा अतः मेरा भवबन्धन छुड़ाने के लिए आप मुझ पर बाण चलाने का निर्णय लेकर आये आपको प्रणाम है।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८१)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

व्याख्या- यह सत्य ही है कि सभी विरुद्ध धर्म मुझमें ही रहते हैं। इसलिए मेरे यहाँ सब कुछ सम्भव है। करना न करना अन्यथा करना और विपरीत करना इस सबमें जो समर्थ है उसे ईश्वर कहते हैं। इसलिए देखो अज अर्थात् अजन्मा होता हुआ भी मैं कौसल्या आदि माताओं के गर्भ से जन्म भी लेता हूँ। आत्मा शब्द का यहाँ स्वरूप अर्थ है। अर्थात् अपरिवर्तनीय स्वरूप वाला होकर भी मैं क्षण में परिवर्तित होता रहता हूँ। इसलिए मुझे राम कहते हैं। राम का अर्थ होता है रमणीय और क्षण क्षण में नया होते रहना ही रमणीयता का स्वरूप है।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः॥

अथवा आत्मा शब्द शरीर का वाचक है, आत्मा शरीर, ऐसा कोश भी कहता है। अर्थात् जिसके शरीर का व्यय अर्थात् नाश नहीं होता वही मैं अव्ययात्मा हूँ। जीव जन्मता भी है और मरता भी है। परन्तु मैं जन्म लेता हूँ मरता नहीं हूँ। इसलिए भगवान् बहूनि मे, व्यतीतानि जन्मानि, कह रहे हैं परन्तु, मरणानि, नहीं कहते। कारण कि जिस भी शरीर को भगवान् ग्रहण करते हैं वह नित्य ही हो जाता है। पर जीव के यहाँ ऐसा नहीं होता। इसीलिए गीता २/२२ में भगवान् कहते हैं।

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णानि नरोऽपराणि” न तु नारायणः अर्थात् जीर्ण वस्त्र को छोड़कर नर नये वस्त्रों को धारण करता है नारायण

के वस्त्र जीर्ण होते ही नहीं। क्योंकि वह चिरपुरातन और नित्य नूतन हैं। देखो- मैं कभी बालक कभी पौगण्ड, कभी किशोर हो जाता हूँ। बहुत क्या कहूँ। मेरे परिवर्तनों की कला तो देखो। श्री मथुरा के रंगमंच पर कंसवध प्रसंग में एक होते हुए भी मुझ कृष्ण को दर्शकों ने बारह प्रकार से देखा जैसे-

मल्लन ने वज्र नरभूषण मनुष्यों ने
नारियों को दिखा मूर्तिमान्मैन रूप में॥
गोपन को स्वजन सलोनो नन्द नन्दन में
दुष्ट नरपालन को काल के स्वरूप में॥
कंस को तो मृत्यु विदुषण को विराट रूप
जोगिन को शान्त तत्त्व परम अनूप मैं॥
यादवन को हैं इष्टदेव वसुदेव जू को
गिरिधर बालरूप भग्न भवकूप में॥

यथा-

मल्लानामशनिर्नृषां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनो ऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगनामं,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥

भागवत १०/४३/१७

इस प्रकार अजन्मा होकर जन्म लेने वाला, अव्ययात्मा होकर परिवर्तनशील होता हुआ, भूतों का ईश्वर होकर भी ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जीवों का शासक, कभी अनीश्वर का भी अभिनय करता हूँ। इस प्रकार आत्ममाया अर्थात् अपनी लीलाशक्ति

से अथवा अपनी योगमाया से अथवा अपनी आह्लादिनी शक्ति सीताजी या राधाजी के साथ अपनी प्रकृति को स्वीकार कर अवतार लेता हूँ। कुछ लोग प्रकृति का वैष्णवी माया अर्थ कर लेते हैं पर वह असंगत है। क्योंकि आगे प्रयुक्त आत्ममाया शब्द से उसमें पुनरुक्ति हो जायेगी। वास्तव में प्रकृष्ट है कृति जिसकी वह भगवत्स्वरूपा भगवान की स्वाभाविकी शक्ति है। इसलिए उपनिषद् में श्रुति कहती है- 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च' 'सम्भवामि' का अर्थ पूर्णरूप से उत्पन्ना होना है। यहाँ सम्भवामि शब्द के सम् उपसर्ग का अर्थ है कि भगवान मां के गर्भद्वार रज पिता के शुक्र समागम क्रिया और गर्भवास आदि किसी भी प्रजनन क्रिया की अपेक्षा नहीं करते। वात्सल्य सम्बन्ध से युक्त भगवान को पुत्र मानने वाले वैष्णव दम्पती का सङ्कल्प ही उनके गर्भाधान की क्रिया है।

भगवान् श्रीराम का कौसल्या में गर्भाधान तो दशरथ जी का हविप्रदान रूप ही है। जैसा कि वाल्मीकि रामायण में कहा भी गया है-

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तम पायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे ततः॥

(बा० रा० बाल० १६/३१)

इसीलिए श्रीमानस में भी-

एहि विधि गर्भसहित सब नारी।

भई हृदय हर्षित सुख भारी॥

मानस १/१९०/५

अथवा 'माया कृपायां लीलायां' इस कोश के अनुसार यहाँ माया शब्द कृपावाची है। इस प्रकार आत्म अर्थात् नित्य बद्धमुक्त जीवों पर 'मायया' कृपा के कारण अपने स्वभाव को आधार मानकर

भक्तवत्सलत्वादि गुणों को प्रकट करने की इच्छा से मैं जन्म लेता हूँ।

अब प्रश्न है कि भगवान् के अवतार में कोई श्रुति भी प्रमाण है? इस प्रश्न का उत्तर है- हैं! जैसे शुक्लयजुर्वेद की संहिता, श्रुति स्पष्ट कहती है-

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तर्जायमानो बहुधाभिजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः। तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वाः।

शुक्ल यजु० ३१/१९

अर्थात् प्रजाओं के पति साकेतविहारी श्रीराम तथा गोलोक विहारी श्रीकृष्ण कौसल्या आदि माताओं के गर्भ में विचरण करते हैं तथा वे गर्भद्वार आदि की अपेक्षा न करके भी कौसल्या जी की प्रार्थना पर चार रूपों में और देवकी जी की प्रार्थना पर दो रूपों में साधारण बालक का अनुकरण करते हुए प्रकट होते हैं। उनके इस जन्म रहस्य को भगवद्भक्त धीरगण ही जानते हैं। उन परमात्मा में सम्पूर्ण भुवन विराजते हैं। इसी प्रकार कृष्णावतार में वसुदेव जी मानस संकल्प से ही देवकी में गर्भ का आधान करते हैं। इसीलिए भागवत १०/१/१६ में भगवान् शुकाचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सम्पूर्ण अंशों के साथ वसुदेव के मन में प्रवेश किया। सामान्य जीवात्मा वासनामय पिता के शुक्र में प्रवेश करता है परन्तु भगवान् उपासनापूर्ण पिता के मन में प्रवेश कर रहे हैं, यही अन्य जीवों की उनकी विशेषता है। इसी बात को और स्पष्ट करने के लिए भा० १०/२/१८ में शुकाचार्य कहते हैं-

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः॥

भा० १०/२/१८

क्रमशः.....

गतांक से आगे-

जय राधा गोविन्द जू (वसिष्ठायनबिहारी श्रीराधागोविन्द जी का विवाह संस्कार)

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

जय राधा गोविन्द जू गिरिधर प्राण अधार।

कीरति लाडली दूलही दूलह नन्द कुमार।।

प्रतीक्षा पूर्ण हुई। ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा ७ जून २००९ के दिन जब पूरा का पूरा राघव परिवार एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ने के लिए उत्सुक वैष्णवजनों के नयन उस चिरप्रतीक्षित ब्रह्मदम्पती के विवाह की प्रसन्नता में जीने के लिए उत्कण्ठित, सब कुछ नया नया और नया। प्रकृति अपनी प्राकृतिक ऊष्मा को छोड़कर आन्तरिक शीतलता का वितरण कर रही थी और ज्वालापुर के गंगा पैलेस के पास सारे वरयात्री यह उत्सव जीने के लिए उपस्थित हुए। एक ओर नाचने गाने का आनन्द दूसरी ओर कीर्तन की धीर ध्वनि तीसरी ओर सबके मन में एक नया प्रयोग निहारने के लिए उत्कण्ठा से भरा उत्साह और चौथी ओर हास परिहास का सात्विक वातावरण आनन्द ही आनन्द। आनन्दकन्द दम्पती का विवाहोत्सव, सुन्दर बग्घी सजाई गई जिस पर गोविन्द जी को वर वेश में विराजना था और उन्हीं के मित्र होने के कारण मुझे भी उस वरयात्रा में सम्मिलित होने के लिए उसी बग्घी पर बैठना था। मैंने भी अपने जीवन को और उस क्षण को धन्य माना और महात्मा सूरदास जी की वह पंक्ति सहसा मन पर आ गई-

सूरदास है कुटिल बराती गीत सुमंगल गैहों।

मंगल, किसका? मंगलमूल माधव का, मंगलायतन श्रीहरि का, मंगल निकेतन वृन्दावनवीथी विहरणपरायण तरुण वनिताजन गेगीयमान गुण गणगौरव भग्नभक्तौरव, समभिनवजलधरसुन्दर, गोपालपूगपुरन्दर, सकलकल्याण गुणगणैकमन्दिर,

भववारिधिमन्दरमन्दर उन श्यामसुन्दर साक्षान्मन्मथ-मन्मथ का, उन्हीं कोटिकोटिकन्दर्पदर्पदलन का, उन्हीं अघटितघटनापटीयसी माया परिकलन का। शोभायात्रा अपूर्व थी क्योंकि यह लौकिक दम्पती का विवाह नहीं था और ना ही लौकिक वर की वरयात्रा। ज्वालापुर की गलियों में से, बाजार में से, हाट में से, बाट में से चतुरस्र एक अनुपम वातावरण आनन्द का, प्रमोद का, आमोद का और उत्सव का। भगवान रश्मिमाली भी अपनी तीक्ष्ण किन्तु अमृतमय दीधितियों से निहार रहे थे श्रीहरि के इस अभूतपूर्व सौन्दर्य को। नववेश में सजीं माताएँ गा रही थीं-

गोविन्द जू फूलों ना समाय

लगन आई आँगन में।

जय जयकार हो रहा था। विवाहे के गीत गाए जा रहे थे। अट्टालिकाओं से महिलाएँ फूलों के गुच्छों की बौछार कर रहीं थीं। और गुलाबजल के फव्वारे पड़ रहे थे। मैं भी एक अन्तरंग अनुभूति कर रहा था और अन्तरंग नेत्रों से इन अनदेखे उत्सवों को जी रहा था। सभी लोग गोविन्द जी पर और मुझ पर भी समय समय पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि विधाता ने उस प्रेम सरोवर का वातावरण आज उपस्थित कर दिया। इस जेठ के महीने में सावन की हरियाली तीज उपस्थित कर डाली। शीतलता का वातावरण था चारों ओर शीतल पेय पिलाये जा रहे थे। लगभग तीन हजार बाराती उस उत्सव को देखने के लिए आज शोभायात्रा में पदयात्रा कर रहे थे। सभी लोग राधे गोविन्द गोविन्द राधे, गीत गा रहे थे, कोई नाच रहा था कोई उछल रहा था कोई हँस

रहा था कोई प्रभु से विनोद कर रहा था। लगता था कि नन्दगाँव के छोरे बरसाने की सखियों के साथ विनोद कर रहे हैं। बस यही था वातावरण। वहाँ उस समय कोई नहीं था बस नन्दगाँव था और बरसाना गोविन्द थे और राधा जी, गोविन्द के सखा थे और राधा जी की सखियाँ। लगभग तीन घण्टे तक इस शोभायात्रा को जीने के पश्चात् हम सभी अपने परिकर अरविन्द शर्मा जी के निवास पर पहुँचे जहाँ बारातियों का स्वागत होना था। अद्भुत स्वागत हुआ, आनन्द हुआ फिर हम 'बन्धन पैलेस' उपस्थित हुए और 'बन्धन पैलेस' में ही आज दिव्य वरवधू का ग्रन्थिबन्धन होना था कदाचित् इसीलिए उसका नाम 'बन्धन पैलेस' पड़ा होगा। क्योंकि जिनके स्मरण से जीव की ग्रन्थियाँ छूट जाती हैं उन्हीं का आज ग्रन्थिबन्धन होना था। सुन्दर मण्डप सजा, हाल खचाखच भर गया। किसी प्रकार की धक्का मुक्की नहीं थी, किसी प्रकार का कोलाहल नहीं था, पुलिस की व्यवस्था भी नहीं की गई थी। अनुशासन था परब्रह्म परमात्मा का और अनुशासन था एक मर्यादामय जगद्गुरु की आचार्यपरम्परा की प्राचीर का। सब लोग जयजयकार कर रहे थे। प्रारम्भ हुआ विवाह महोत्सव वैदिक विधान से। जिस प्रकार नारद जी के पौरोहित्य में ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण जी को राधा जी का कन्यादान किया था वही उत्सव फिर दुहराया गया और मेरे अर्थात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य के पौरोहित्य में कन्यादान सम्पन्न हुआ। गोविन्द जी के श्रीहस्तकमल में राधा जी को समर्पित किया सुमन मंगल ने और उनके पति प्रवीण मंगल ने। वेदध्वनि से वातावरण रसमय हो गया। समय समय पर वेदध्वनि हो रही थी और उसी समय राधाकृष्ण की अठखेलियों

के गीत रसिकजन गा रहे थे। कहाँ गया समय किसी को पता ही नहीं चला और भागवत जी के दशमस्कन्ध के ३०वें अध्याय का ३२वाँ श्लोक अब चरितार्थ हो गया-

इमान्यधिक मग्नानि पदानि वहतो वधूम्।

गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥

श्रीभागवतकार ने राधा जी को वधू कहा। वधू उस महिला को कहते हैं जो अपने भाई के द्वारा दी हुई लाजा की आहुति करती है। आज लाजाहुति हुई, कन्यादान हुआ। स्पष्ट वृषभानु ने घोषणा की-

इयं राधा मम सुता सहधर्मचरी तव।

प्रतीक्ष्य चैनां भद्रं ते पाणिं गृहणीष्व पाणिना॥

'राधानाम्नीं कन्यां सर्वाभरणभूषितां ददामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोक जिगीषया'। यह राधा मेरी सुता आपकी धर्मचारिणी है इनको एक बार पत्नी रूप में निहारे इनका हाथ पकड़िये, आपको नजर न लग जाय। सम्पूर्ण आचरणों से भूषित राधा नामक इस कन्या को अब मैं ब्रह्मलोक को जीतने की इच्छा से भगवान विष्णु को दे रहा हूँ। आप महाविष्णु हैं। ग्रहण कीजिए राधा को। मैं भी उसी उत्साह से मन्त्र पढ़ रहा था और मेरे साथ मन्त्र पढ़ने वाले तीन शिष्य भी थे चन्द्रदत्त सुवेदी, केशवराज पोखरियाल और कृष्णकुमार चौबे। उस समय मेरी अग्रजा आप सबकी बुआ जी एक अभूतपूर्व भावना में डूब रहीं थीं। उनकी निर्दोष आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ तो रहे थे पर अमंगल के भय से उन्हें गिराने में वे संकोच कर रही थीं। अद्भुत दृश्य था। सब लोग गोविन्द जी को निहार रहे थे। उस विग्रह में एक प्रकार की वासनानिग्रहता और उपासनायुक्त अनुग्रह का उभय संगम था। जय जयकार हो रही थी। सब कुछ वैदिक

विधान से हुआ। भाँवरी हुई और भाँवरी में सात बार अग्नि की परिक्रमा की राधा गोविन्द ने। और जब कहा 'सतई भँवरिया हे तब राधा श्याम की' तब चारों ओर जय जयकार की ध्वनि गूँजने लगी। सिन्दूरदान की विधि सम्पन्न हुई। गोविन्द जी ने राधा जी को सिन्दूर दान किया और सप्तपदी के विधान के आधार पर दोनों का ग्रन्थिबन्धन सम्पन्न हो गया। चिरप्रतीक्षित उत्सव फिर दुहराया गया द्वापर का वातावरण कलियुग में आया। वृन्दावन का वह प्रेम सरोवर लगता था कि 'बन्धन पैलेस' में समाहित हुआ। द्वापर कलियुग के आँचल में छिप गया। उत्साह से दोनों ओर से कार्यक्रम हुए। मेरी ओर का प्रतिनिधित्व कर रहे थे राकेश मित्तल और सारिका मित्तल और कन्या पक्ष का प्रतिनिधित्व कर रहे थे प्रवीण मंगल और सुमन मंगल। यद्यपि दोनों ही मेरे शिष्य हैं परन्तु इस बार गोविन्द के मन में क्या उत्सुकता हुई कि उन्होंने अपना विवाह रचा ही लिया। और लगता है कि लोगों का जो सहस्रों वर्षों का अपवाद था उस अपवाद पर आज विराम का चिह्न लगा, लोगों के मुँह में ताला लगा।

मैंने भी कह डाला कि राधाकृष्ण के दाम्पत्य के सम्बन्ध में सन्देह सर्वथा निर्मूल है और मैं कह सकता हूँ कि अठारहों पुराणों में श्रीराधा जी के विवाह की चर्चा है। और भागवत जी में तो १८ हजार बार श्रीराधा जी का स्मरण किया गया है। श्रीराधा जी श्रीकृष्ण की नित्यसहचरी हैं। जैसे श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड के दोहा क्रमांक ९७ में सीता जी ने श्रीराम को आर्यपुत्र कहा—
आरति बश सनमुख भयउँ बिलग न मानव तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात।।

वहाँ जैसे सीता जी ने श्रीराम को आर्यपुत्र कहा उसी प्रकार सम्पूर्ण भागवत में एक ही बार आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग हुआ। वह भी श्रीराधा जी ने किया श्रीमद्भागवतम् के दशम स्कन्ध के ४७वें अध्याय के २१वें मालिनी छन्द के श्लोक के प्रथम चरण में—

अपि बह मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्यबन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्किरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु।।

श्रीराधा जी ने श्रीकृष्ण को आर्यपुत्र कहा। उस बार आर्यपुत्र का विवाह सम्पन्न हुआ था राधा जी के साथ और उसको बहुत कम लोगों ने देखा। मुझे तो लगता है कि मर्त्यलोक में किसी ने नहीं देखा तो कदाचित् उसी पुण्य की भरपाई करने के लिए गोविन्द जी ने मेरे मन में ऐसी प्रेरणा दी होगी इस बार कि राधा गोविन्द जी का विवाहोत्सव रचाया ही जाय। और उस बार जो लोगों ने नहीं देखा है वे देखें और द्वापरकालीन श्रीराधाकृष्ण विवाह के दृश्य पर भी प्रश्नचिह्न लगायें। उस दृश्य पर कलियुग हँसे और द्वापर से यह कहे कि तुमने तो श्रीराधाकृष्ण का विवाह सबको नहीं दिखाया, चुपके से करवाया पर मैंने सबके सामने श्रीराधागोविन्द का विवाह कराया। जय जयकार हुई, धन्य हुआ वातावरण, धन्य हुई श्रीराधा जी श्रीकृष्ण को पाकर और श्रीकृष्ण जी धन्य हुए श्रीराधा को पाकर दोनों चकोर दोनों चन्द्रमा। इस प्रकार आज मैं इतना ही कह सकता हूँ कि—
जय राधा गोविन्दजू नागर जुगल किशोर।
दुलहिन दूलह मुदित मन जय 'गिरिधर' चित चोर।।

श्री राधागोविन्द भगवान की जय।।

□□□

भारत को गारत होने से बचाओ

□ डॉ० उन्मेष राघवीय

वैसे तो पूरा संसार ही भयंकरतम विभीषिकाओं की चपेट में है किन्तु वर्तमान भारत तो अनेक ज्वलन्त समस्याओं से जूझ रहा है। चारों ओर भ्रष्टाचार को बोलबाला है। आतंकवाद महादैत्य के रूप में मंडरा रहा है। प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का हो सभी के लिए सिरदर्द बना हुआ है। बलात्कार-हत्याकाण्ड एवं निरपराध प्राणियों की निर्मम हत्या जैसे कुकृत्यों ने मानव का धिनौना चित्र बना दिया है। बोट और नोट खींचने की लालसा ने राजनीतिक नेताओं को मदान्ध बना दिया है। कहाँ ले जाएगी यह महत्वाकांक्षा सभी को? अपने अतीत को भुलाकर भविष्य के अन्धकार के प्रति उदासीन रहने वाले तथाकथित प्रगतिशील नेताओं ने भारतीय समाज को विकृत कर दिया है। पश्चिम की परम्पराओं के अन्धानुकरण का परिणाम अन्धकार में आकण्ठ डूबना है। जिस क्षेत्र में भी देखो तथाकथित प्रगति के गीत गाए जा रहे हैं, सफलता के सहरे पढ़े जा रहे हैं। विदेशी कम्पनियों के आकर्षण के सागर में युवावर्ग डूब चुका है। दूरदर्शन तथा स्वतन्त्र प्रसारणों के प्रचलन ने भोगविलास की सामग्री, गर्हणीय विज्ञापन और मनमाने तथ्य प्रस्तुत करके वाल तथा युवापीढ़ी को भारतीय संस्कृति से विच्छिन्न करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। प्राचीन शिक्षा, संस्कार, मर्यादा, जीवनमूल्य, साहित्य तथा जीवनशैली सबका उन लोगों के द्वारा उपहास किया जा रहा है जो न सत्ता में हैं न प्रभाव में हैं और न ही पारम्परिक चिन्तन पथ के पथिक हैं। अधिक क्या कहा जाए

विश्व के अनेक देश, अनेक मत-पन्थ-मजहब-रिलीजन एकमात्र भारतीय संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट करने पर तुले हैं। इसी संस्कृति में रचे-बसे रहने पर भी भोगवादी जनता भौतिकवाद के चक्कर में मौलिकता को विस्मृत कर चुकी है। आज मानवता के उद्घोष में दानवता ही छिपकर बैठी है। धर्म और सत्कर्म की आड़ में पाखण्ड पनप रहा है। समस्याएँ सुरसा की भाँति खड़ी हैं। गोवंश का हजारों-लाखों की संख्या में संहार हो रहा है। जिस देश में स्वाहाकार-स्वधाकार होते थे वहाँ आज हाहाकार हो रहा है। पारिवारिक कलह और दुश्चरित्रता के कारण आज खुले आम हत्याएँ हो रही हैं। अधिक क्या कहा जाए, आज विकास के नाम पर विनाश अधिक हो रहा है।

ऐसी विषम परिस्थिति में धर्मप्रेमी जनता किंकर्तव्यविमूढ़ सी हो रही है। राष्ट्र और धर्म दोनों की दुर्दशा देखकर यद्यपि सज्जनों को आन्तरिक बहुत दुःख होता है। किन्तु यदि अपने धर्मशास्त्रों को हम देखें तो वहाँ युगानुरूप समाधान मिल सकते हैं। जैसे भगवान् के दिव्यचरित्रों का अध्ययन अध्यापन बढ़ाया जाए। उनमें निहित शिक्षाओं को जीवन में उतारा जाए। वेदादि धर्मशास्त्रों में वर्णित स्वधर्म अथवा स्वकर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहा जाए। वैचारिक उदारता का यह अर्थ कभी न लिया जाना चाहिए कि हमारी संस्कृति हमारी विरासत, हमारी माँ-बहिन की लाज दानव-दल लूट रहा हो और हम 'अहिंसा परमोधर्मः' के ही गीत गाते रहें।

अहिंसा का यह अर्थ तब उचित होगा कि अत्याचारियों की हिंसा भी अहिंसा माना जाय। अपने राष्ट्र और धर्म के गीत गाने वाले तथा तदनुरूप इनकी रक्षा के लिए तत्पर रहने वाले लोगों का संघटन बनाकर राष्ट्रद्रोहियों को ललकारना चाहिए। ऐसे सांसदों और विधायकों का चयन करके ही लोकसभा और विधानसभा में भेजना चाहिए जो भारत के कण कण के प्रति प्रेम और इसकी रक्षा के लिए मनवाणी और कर्म से संकल्प लें। लोकतन्त्र में संघटित रहकर ही दुर्लभ वस्तु को सुलभ किया जा सकता है। इतना ही क्यों, जो तत्त्वदर्शी मनीषी और हितैषी हों उनको उच्चपदों पर परामर्श हेतु नियुक्त किया जाए।

जो चिन्तनशील-मननशील महात्मा-सन्त-आचार्य हों उनके चरणों में वर्तमान समस्याओं का समाधान पूछा जाए। कुलगुरु वसिष्ठ, समर्थ गुरु रामदास महान नीतिज्ञ आचार्य चाणक्य जैसे महापुरुषों ने इस देश की दिशा और दशा बदली है। उन्होंने ही अपने तपोबल से सुयोग्य शिष्यों को इस धरती का अलंकार बनाया है। आवश्यकता केवल सत्संकल्प की, शिव संकल्प की अथवा संकल्पबल की।

आशा है भारतीय जनमानस एवं जनमानस के हितचिन्तक भारत को गारत होने से बचाने की पहल प्रारम्भ करेंगे।

भारत माता की जय।

□□□

सच्ची भक्ति

□ शिवकुमार गोयल

धर्मशास्त्रों के प्रकांड विद्वान संत अनमीषि को शास्त्रीय ज्ञान के कारण 'अक्षर महर्षि' कहा जाता था। वह आश्रम में छात्रों को ज्ञान-दान करने में लगे रहते थे।

एक संत उनके आश्रम में आए। उन्होंने महर्षि से कहा, 'आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। शास्त्रानुसार क्या दान देते हैं?' उन्होंने कहा, 'मैं छात्रों को निःशुल्क पढ़ाता हूँ। यह भी तो ज्ञान-दान ही है।' संत जी ने शास्त्र का प्रमाण देकर कहा, 'सद्गृहस्थ संत को अन्नदान भी जरूर करना चाहिए। भूखों व जरूरतमंदों को अन्नदान करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है।' महर्षि ने संकल्प किया, 'आज से अन्नदान करके ही भोजन किया करूँगा।' उन्होंने प्रतिदिन दरिद्र को भोजन कराना शुरू कर दिया।

एक दिन आश्रम में कोई भी भोजन मांगने

नहीं आया। उन्हें लगा कि आज उनका संकल्प पूरा नहीं होगा। ऋषि दंपति भूखे की खोज में आश्रम से निकल गए। उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध कुष्ठ रोगी को कराहते हुए देखा। उन्होंने उससे विनयपूर्वक कहा, 'तुम भूखे हो, आश्रम में चलकर भोजन करो।' वृद्ध ने कहा, 'मैं चांडाल हूँ। मैं आश्रम में कैसे जाऊँगा?'

ऋषि का हृदय उसके शब्द सुनकर करुणा से भर गया। उन्होंने कहा, 'चांडाल और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं होता, हम एक ही परमात्मा के अंश हैं।' वृद्ध उनके साथ आश्रम में आ गया। ऋषि दम्पति ने भोजन कराया व उसका उपचार किया।

ऋषि को सोते समय अनुभूति हुई कि भगवान कह रहे हैं, यही सेवा मेरी सच्ची भक्ति है।

□□□

श्रीरामकथा की प्रासंगिकता

□ श्रद्धेय चन्द्रबली 'हंस'

रामकथा मानव-मन की व्यथा से उद्भूत है। इस सृष्टि में जो भी श्रेष्ठतम है वह अट्टहास के कोलाहल से नहीं वरन् पीड़ा के क्रंदन से उद्भूत है। आदिकाव्य रामायण का जन्म भी पीड़ा की कोख से ही हुआ है-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

वा०रा० २१/१५

रामकथा व्यथित मानव-हृदय का सहज रसोद्रेक है। वह समस्त मानवीय करुणा का आसव है इसीलिये मानवमात्र की पीड़ा की राम-बाण औषधि भी है। जब तक धरती पर मनुष्य रहेगा, उसकी पीड़ा रहेगी तब तक रामकथा की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

कुछ लोग बासीपन और परिवर्तन की बातें करते हैं, वे आधुनिकता, समकालीनता और प्रगतिशीलता की बातें करते हैं। उनके लिये अतीत दगे हुये कारतूस के खोखे की तरह व्यर्थ है और इसे जेब में रखने के बजाय फेंक देने में ज्यादा समझदारी है। पर यह पश्चिम का दृष्टिकोण हो सकता है, हमारे भारतीय मनीषियों का दृष्टिकोण ठीक इसके उलट है। हम अपने अतीत को दगे हुये कारतूस के खोखे की तरह नहीं मां की उस गोद की तरह देखते हैं जिसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता प्रसव के बाद पोषक के रूप में बनी रहती है।

हमारे लिये हमारा अतीत उपेक्षणीय नहीं, वंदनीय है क्योंकि इसके आधान में हमारे पूर्वजों का अमृत चिंतन वैसे ही भरा पड़ा है जैसे धात्री माँ के स्तनों

में दूध। अब एक बच्चे के लिये माँ के दूध की जो प्रासंगिकता है ठीक वहीं प्रासंगिकता हमारे लिये हमारे अतीत की है।

इस सृष्टि और समाज का सब कुछ परिवर्तनीय नहीं है। प्रत्येक परिवर्तन सापेक्ष है तथा उसे किसी न किसी स्थायी (अपेक्षाकृत) आधार की अपेक्षा होती है। नदी प्रतिपल बदलती है पर उसके अस्तित्व को पहचान देने वाले कगार नहीं, यदि कगार भी बहने लगे तो नदी मर जायेगी। कुलाल का चाक घूमता है पर वह धुरी नहीं जो स्थायी रहकर चाक को घूर्णन की शक्ति और आधार प्रदान करती है। गति और स्थायित्व के बीच का संतुलन ही इस सृष्टि और समाज के अस्तित्व का रहस्य है। मानव समाज कुलाल के चाक की तरह ही गतिशील है और इसे गतिशील रहना भी चाहिये, लेकिन वह धुरी नहीं घूमनी चाहिये, जिस पर यह चक्र घूम रहा है। रामकथा वह धुरी है जिस पर भारतीय समाज घूर्णित, गतिमान और प्रगतिशील है। रेलगाड़ी दौड़ती है उसकी पटरी नहीं। रामकथा भारतीय समाज की प्रगति की वही पटरी है। भारतीयता न तो भौगोलिकता में है और न स्थापत्य या खान-पान और पहनावे में। आधुनिकता, समकालीनता और प्रगतिशीलता की पहुँच इन्हीं स्तरों तक चुक जाती है। लेकिन कुछ चीजें हैं जो इनसे ज्यादा गहराई पर हैं और इन परिवर्तनों और गति के लिये आधार का काम करती हैं, उन चीजों को हम मानव-जीवन-मूल्यों के रूप में जानते हैं। वे जीवन-मूल्य रामकथा में राम के गुणों के रूप में संगुम्फित हैं। यथा, श्रीराम नियतात्मा,

महावीर्यवान, द्युतिमान, धृतिमान, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, नीतिमान, वाग्मी, श्रीमान, शत्रुसंहारक, सुदर्शन, धर्मज्ञ, सत्यसंध, प्रजापालक, शास्त्रज्ञ, तत्त्वज्ञ, स्मृतिमान, प्रतिभावान, सर्वलोकप्रिय, साधु, उदार-हृदय, विलक्षण, समदर्शी, समुद्र की तरह गंभीर, हिमालय की तरह दृढ़, क्रोध में कालाग्नि सदृश, क्षमा में पृथ्वीतुल्य, त्याग में कुबेर और सत्य में धर्मराज के समान हैं। यदि प्राचीन काल के मनीषी इस तरह के मानव की कल्पना वर्तमान को टिक्थ के रूप सौंपते हैं तो आधुनिकता के नाम पर आप इसमें क्या घटा-बढ़ा सकते हैं? क्या इस तरह के मनुष्य की आज आवश्यकता नहीं है? इनमें से कौन से ऐसे गुण हैं जिन्हें आप आज अप्रासंगिक घोषित कर सकते हैं। ये ही मानवीय गुण भारतीय समाज द्रष्टाओं के स्वप्न और भारतीय समाज की धुरी रहे हैं, और आज भी हैं, और इसीलिये आज भी रामकथा की प्रासंगिकता है।

कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो प्रासंगिकता के बौने प्रश्न चिह्न से काफी ऊपर होती हैं। व्यक्ति के आँसू और मुस्कान इसी कोटि में आते हैं। क्या आज का आदमी अब इसलिये नहीं मुस्कुरायेगा कि मनुष्य पाषाण काल से मुस्कुराता आ रहा है और अब यह मुस्कुराना रूढ़ि में बदल गया है या वह इसलिये आँसू नहीं बहायेगा क्योंकि यह एक आदिम परम्परा है। अरे भाई! शस्त्र बदल सकते हैं, शस्त्र पकड़ने वाले हाथ और उन हाथों के मजहब बदल सकते हैं, शस्त्र के आघात झेलने वाले वक्ष और उनकी जातियाँ बदल सकती हैं पर क्या हर आघात के बाद उठने वाली चीखें, बहने वाले आँसू और महसूस की जाने वाली पीड़ाएँ भी बदल सकती हैं। आधुनिकता की सनक में आप उन चीजों की

क्यों उपेक्षा करते जा रहे हैं जो काल के साथ परिवर्तित नहीं होती हैं वरन् काल के परिवर्तन की मानदण्ड बनती हैं। चूँकि रामकथा आमजन की व्यथा-कथा है इसीलिए कालातीत है। काल नहीं वरन् राम-कथा काल के बासीपन और अप्रासंगिकता की घोषणा कर सकती है। हमारी संस्कृति कालजयी इसीलिए है क्योंकि हमने कालजयी मूल्यों को सामाजिक धुरी के रूप में मान्यता प्रदान की है। अतः रामकथा चिरपुरातन और चिरनवीन तथा सार्वयुगीन प्रासंगिकता से परिपूर्ण है क्योंकि यह 'आमजन' की आँसू और मुस्कान की कथा है।

“रामकथा आम-जन के आँसू और मुस्कान की कथा” पर कुछ लोगों की भृकुटियाँ तन सकती हैं और वे इसे आमजन की नहीं अभिजन की गाथा घोषित करने की जिद तक कर सकते हैं। प्रस्तुत अनुच्छेद ऐसे ही लोगों के नाम समर्पित है। निवेदन इतना ही है कि आप जिद नहीं सार्थक बहस के धरातल पर उतरें। श्रीराम जीवन के संघर्ष में न तो अवतार की तरह उतरते हैं और न राजकुमार की तरह। वे “तापस बेस बिसेष उदासी” के रूप में अपने पिता के राज्य से निर्वासित होते हैं। वे अकिंचनता के उस सीमा पर खड़े हैं कि नदी की उतराई में पत्नी की अँगूठी तक देनी पड़ती है। “प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा।” उनका अवतारी रूप मात्र अपने भक्तों के लिये है और उन्हीं के सामने वे अपनी भगवत्ता प्रकट करते हैं। अपने प्रतिपक्षियों से तो वे मनुष्यता की सीमा में ही रहकर निपटते हैं। मेघनाद हो या रावण ये सभी युद्ध में अमानवीय और अति मानवीय शक्तियों का प्रयोग करते हैं पर श्रीराम मनुष्यता के धरातल पर ही खड़े होकर इनका जवाब देते हैं। राक्षसी शक्तियों का सामना करते

समय वे न तो राक्षस बन जाते हैं और न देव। मनुष्यता की सीमा में रहकर भी हम अपनी पैशाचिक समस्याओं से जूझ सकते हैं और उन्हें पराजित कर सकते हैं, यही श्रीराम का मनुष्य मात्र को सर्वोपरि संदेश है। रावण जब नहीं मरता है तो श्रीराम विभीषण से उसकी मृत्यु का रहस्य पूछते हैं पर स्वयं के अन्तर्यामित्र को प्रयोग नहीं करते हैं-

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा।

राम बिभीषन तन तब देखा।।

राम रावण का युद्ध एक आमजन और शोषक तथा उत्पीड़क पूँजीवादी ताकतों में बीच में इसलिये और भी है क्योंकि श्रीराम रावण से आम जन की तरह लड़ते हैं अभिजन की तरह नहीं। “रावन रथी बिरथ रघुबीरा”, नाथ न रथ नहि तन पद त्राना”, क्या ये उदाहरण पर्याप्त नहीं? राम के साथ चतुरंगणी सेना नहीं वानर सेना है जिनके अस्त्र उनके लात-हाथ और दाँत हैं- “मुठिकन लातन दाँतन काटहिं” क्या कोई राजा था राजकुमार या अभिजन इन्हीं संसाधनों से लड़ाई लड़ता है? क्या राम केवल अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं? क्या यह युद्ध में शामिल वानर भालुओं एवं आदिवासियों की स्वयं की लड़ाई नहीं है? क्या यह आमजन की शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ाई नहीं है? क्या एक मात्र सीता का ही हरण रावण ने किया था?

देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नागकुमारि।

जीति बरी निज बाहुबल बहु सुंदर बन नारि।

क्या हनुमान जी ने सीता जी की खोज के समय इन हरी गई स्त्रियों की दुर्दशा स्वयं नहीं देखी थी-

“नर-नाग सुर गंधर्व कन्या रूप पुनि मन मोहहीं”।

राम जिस अन्याय के विरुद्ध युद्धरत हैं उस अन्याय का शिकार वह पूरा युग है और श्रीराम के अपने युग के लिये लड़ रहे हैं मात्र स्वयं के लिये नहीं। श्रीराम की विशेषता यह है कि वे अन्याय एवं अत्याचार को मात्र आँसू बहाकर क्लीब पुरुष की तरह चुपचाप सह नहीं लेते हैं वरन् सब कुछ दाव पर लगाकर इसके विरुद्ध उठ खड़े होते हैं। अब प्रश्न है कि क्या अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष किसी भी युग में अप्रासंगिक हो सकता है? तत्कालीन देवताओं की तरह ही अन्याय एवं अत्याचार से समझौता कर अर्वाचीन रावणों की गोद में बैठकर मलाई काट रहे बुद्धिजीवियों को इस बात का जवाब देना चाहिये?

आज राम मात्र इसीलिये वन्दनीय नहीं है कि अवतार थे। आज के अनास्थावादी वैज्ञानिक युग में संभव है हम अवतारी राम को बहुत देर तक बचा कर न रख पायें पर- दे रही दिखाई भग्न, मग्न रत्नाकर की वह राह, एक निर्वासित का उत्साह। इस अदम्य उत्साह को भी क्या कोई वैज्ञानिक युग मार सकता है? इस अत्यन्त यान्त्रिक युग में एक मात्र प्रेम और उत्साह ही तो मानव पूँजी के रूप में बचे रह गये हैं जिसे अभी तक मशीनों के हवाले नहीं किया जा सका है? क्या कभी प्रेम और उत्साह भी जो रामकथा की विशेषता है अप्रासंगिक हो जायेगा? क्या नितांत दबे, कुचले, निहत्थे, शोषित, अशिक्षित सर्वहारा जन को प्रेम की संजीवनी से सींचकर और मानवोचित अदम्य उत्साह से भरकर, जयशील बनाकर उस युग के सबसे बड़े दुर्दांत अत्याचारी के विरुद्ध सन्नद्ध कर देने का उत्कट अध्यवसाय जो मानवीय इतिहास में केवल रामकथा के नाम दर्ज है, किसी भी युग के लिये दुर्लभ

प्रेरणास्रोत नहीं है? विशेषकर आज के मरियल भारतीय समाज के लिये जहाँ नंगा खुदाऊ से बंगा सिद्ध हो रहा है। भयभीत समाज के लिये जब तक भय-अभय की आवश्यकता रहेगी, तब तक रामकथा की प्रासंगिकता रहेगी। क्योंकि श्रीराम के जीवन का संकल्प ही है-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

वा०रा० ६११८/३३

श्रीहनुमान जी रामकथा में श्रीराम के लीला सहचर हैं। पूरे रामचरित मानस में हनुमान जी किसी भी शस्त्र से नहीं लड़ते हैं जहाँ तक कि अपने चिर परिचित हथियार गदा से भी नहीं। रामचरित मानस के हनुमान गदाधर हनुमान नहीं हैं। कवितावली में गोस्वामी तुलसीदास जी हनुमान की युद्ध कला का वर्णन करते हैं-

हाथिन सो हाथी मारे,
घोरों सो संघारे घोर,
रथनि सो रथ बिदरनि बलवान की।
लाबीं लूम लसत,

लपेटी पटकत भट,
देखौ देखौ लखन लरनि हनुमान की।

अर्थात् रावण के साधनों से ही रावण का विनाश करते हैं। वे लंका की आग से ही लंका जलाते हैं और हमें संदेश देते हैं कि पापी का विनाश स्वयं उसी के पाप से हो जाता है। इस ऐतिहासिक सत्य का अब तक कोई अपवाद नहीं है कि जो लोग तलवार के बल पर जीते हैं, एक दिन उनकी गर्दन उसी तलवार की नोक से कटती है, बस आवश्यकता है तो उस तलवार को थोड़ी सी जुम्बिश देने की। और जब तक यह आवश्यकता बनी रहेगी राम और रामकथा की प्रासंगिकता बनी रहेगी। अतः हम बाल्मीकि रामायण के इस सुभाषितम् के साथ अपनी बात समाप्त करना चाहेंगे कि-

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

वा०रा० ११३/३६

अर्थात् जब तक इस पृथ्वी पर नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा। □□□

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

□ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

दिनाङ्क	विषय	आयोजक तथा स्थान
०७ जुलाई २००९	श्रीगुरु पूर्णिमा	श्रीचित्रकूट में ही मनायी जाएगी
१९ सितम्बर २००९ से २७ सितम्बर २००९ तक	श्रीमद्भागवत कथा	नैमिषारण्य जिला-सीतापुर (इस कथा का आमन्त्रण अगले पृष्ठ पर देखें)

विशेष- ७ जुलाई २००९ से ४ सितम्बर २००९ तक श्रीतुलसीपीठ चित्रकूट में पूज्यपाद जगद्गुरु जी का चातुर्मास्यव्रत तथा 'विभीषणशरणागति' पर प्रतिदिन दिव्य प्रवचन होगा।

**विश्वविलक्षण विभूति धर्मचक्रवर्ती श्रीवैष्णवचक्रचूड़ामणि, महामहोपाध्याय
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार
श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ**

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे शीघ्र ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100.00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300.00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

निवेदक

पं० अमरनाथ शास्त्री

आयोजक

हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम

(बस स्टैण्ड के पास) नैमिषारण्य

जि० सीतापुर (उ०प्र०)

फोन नं०- 05865-251272

मो०- 09918331369, 09936377207

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति

(मिश्रिख कम नीमसार 0210112) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।

□□□

भागवत सप्ताह विवरणिका

□ पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज

शौनक सूत सम्बाद भागवत महिमा जड़भरत रहनि रहूगण ते कहनि,
विषादजुत भगति नारद की बतकही। सप्ताह द्वितीय दिन 'गिरिधर' गायो है॥३॥
गगनगिरा गभीर भागवत श्रवण ही, भूगोल खगोल विधि नरक निसिधि सिधि,
सत्कर्म मनुज को विरुद बाँकुरो लही॥ हरिनाम महिमा प्रताप ताप तायो है।
कृष्णरूप भागवत आत्मदेव को चरित, अजामिल उपाख्यान दिति अदिति संतान,
गोकर्णदेव धुन्धुकारी मोक्ष निर्वही। नारायणकवच सुजन मन भायो है॥
ज्ञान औ वैराग्य शुचि जागरण भयहरण, दधीचि को अस्थिदान वृत्रवध को बखान,
भागवतमहातम 'गिरिधर' कथा कही॥१॥ चित्रकेतु मरुत जन्म कथा थायो है।
मङ्गलशौनक प्रश्न शुकजन्म हरि अवतार, प्रह्लाद जनम मरम सुधरम गुन,
कथा भागवत व्यास प्रगटायो है। हरिस भगति विलास मन भायो है॥
उत्तरागरभ-रक्षा भीष्म मोक्ष राजा जन्म, नरसिंह अवतार हिरण्यकशिपुबध,
उदय विजय शुक उपदेश भायो है॥ सप्ताह तृतीय दिन गिरिधर गायो है॥४॥
विदुर उद्धव वार्ता मैत्रेय भागवत कथा सृष्टि, विमलगजेन्द्रमोक्ष समुद्रमन्थनकथा,
प्रजापति जन्म वाराह जू जायो है। कच्छप धनवन्तरि मोहिनी प्रगटायो है।
जय-विजय को शाप हिरण्याक्षवध हरिकृत, बलिजय अश्वमेध वामनावतार भिक्षा,
सप्ताह प्रथमदिन 'गिरिधर' गायो है॥२॥ गङ्गाजन्म मत्स्य अवतार मन भायो है॥
कपिल जनम देवहूति उपदेश नवकन्या जस, अम्बरीश सगर दिनेश बंश नृपकथा,
दत्तजग्य नारायण भायो है। रामचन्द्र आविर्भाव सुख सरसायो है।
शम्भु ध्रुव को चरित पृथु अवतार कथा, चन्द्रवंश पुरुयदुकथा कृष्ण को जन्म,
प्राचीनबर्हिगुन प्रचेता सुहायो है॥ सप्ताह चतुर्थदिन गिरिधर गायो है॥५॥
प्रियव्रतकथा ऋषभावतार उपदेश, नन्दोत्सव पूतनाशकट तृणावर्त हरि,
भरत को चरित विराग सरसायो है। बाललीला दधिचोरी ब्रजमाटी खायो है।

उलूखलबन्धन यमलाजुन उधारि कान्ह,
 वृन्दावन जाइ गाइ बछरु चरायो है।।
 वकवत्स अधवधि नागनाथि अग्निपियो,
 गिरिधरेउ गोपी प्रेम रासरस छायो है।
 मथुरागमन कंशबध रुक्मिणी विवाह,
 सप्ताह पञ्चम दिन गिरिधर गायो है।।६।।
 प्रद्युम्न जनम दिव्यमहिषी वरण भौम-
 वध षोडशसहस्र नारिब्याहि लायो है।
 पारिजात हरौ सुरजीति वाणभुजकाटि,
 ऊषा अनिरुद्ध को विवाह रचवायो है।।
 पौण्ड्रशिशुपाल दन्तवक्र विदूरथदलि,
 पारथनिमित्त महाभारत करायो है।

सुदामा को मीत कृष्णचन्द्र द्वारकाधीश
 सप्ताह के छठे दिन गिरिधर गायो है।।७।।
 यादवकुमार परिहासमिस विप्रशाप,
 मूसल जनम कुल नाश दरशायो है।
 वसुदेव नारदनिमित्त नवयोगेश्वर,
 कथा व्यथा हरनि उद्धवगीता गायो है।।
 कृष्णलीला सम्बरण कलिधर्म को कथन,
 परीक्षितगोलोकगमन मुनि भायो है।
 पुराणसंहिताविधि मार्कण्डेय मायाविधि,
 सप्ताह सप्तमदिन गिरिधर गायो है।।८।।

□□□

गुरौ प्रसन्ने परमः प्रसीदति

गुरौ विषण्णे वृषणो विषीदति।

गुरौ च तुष्टे ननु लोकसम्पदो

गुरौ हि रुष्टे विपदः पदे पदे।।

महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीत

श्रीभार्गवराघवीयम् ३/८०

कृपाटीका- गुरुदेव के प्रसन्न होने पर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। गुरुदेव के दुःखी होने पर भगवान् विष्णु दुःखी हो जाते हैं। सद्गुरु के सन्तुष्ट होने पर संसार की सारी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं और गुरुदेव भगवान् के रुष्ट होने पर पग-पग पर विपत्तियों के दर्शन होते हैं।

□□□

सादरमभिनन्दनम्

श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्या-
णां श्रीभक्त्युद्यान दिव्यदेश प्राङ्गणे श्री वेंकटेशदेव
भगवत्कृपाकटाक्ष पुरस्तात् साधु मंगलाशासनपूर्वकं
श्रीत्रिदण्डिदेवस्थानस्थान्यासिपीठाधीश्वर द्वारा
सादरमभिनन्दनम्-

रामानन्दे चरणकमले रामभक्ति प्रबन्धे
श्रद्धाभक्त्या चरणशरणे पूर्णलब्धाश्रयत्वम्।
सेवाभावं प्रभुवरदया प्राप्तविद्यानिधित्वं
यस्याद्यात्र प्रकटमहिमा रामभद्रार्यकः सः॥

ध्यानज्ञाने शमदमयुतो रामभद्राभिधानः
शास्त्राचार्यो ललितवचनै रामभक्तिं प्रबोध्य।
भक्तान् सर्वान् रघुवरपदे सेवकत्वे नियुज्य
भूयाद्भूमौ सदयरसिको रामभद्रार्यलीनः॥

नानाशास्त्रप्रखरविदुषो वेदवेदान्तगम्यः
शान्तोदान्तः सुश्रुतिनयनो रामरक्षारसौघः।
श्रीरामस्य सरसवचनैर्यस्य विद्यावधानात्
सोऽयं भूयादभिमत गुरु रामभद्रार्यकोऽसौ॥
विशिष्टाद्वैत सिद्धान्ते मर्मज्ञो राममन्त्रदः।
रामभद्र प्रसादेन रामभक्ति प्रवर्धनः॥

वेद विद्यावगाहेन धर्मधाम प्रबोधकः।

चित्रकूट वरे धाम्नि रामानन्दार्यपीठगः॥

वेदवेदाङ्ग निष्ठातो धर्मशास्त्र प्रवाचकः।
जगद्वन्द्वो जगद्गुरुर्वर्धतामभिवर्धताम्॥
रामभक्ति प्रवृत्त्या वै सर्वसामर्थ्य साधकः।
ज्ञान ध्यान भयो योगी रामभद्रार्य सङ्गमः॥

सर्वोपनिषदामर्थे रामायण रसार्द्रधीः।
चित्रकूट कलालीनो भासते भास्करद्युतिः॥
मोहाऽज्ञान निरासाय समेषां हृदयङ्गमः।
तुलसीधाममठाधीशो रामभद्रोऽभिनन्द्यते॥

रामलीलालवेलीना दृष्टिरन्तः प्रकाशिनी।
यस्यानन्दमयी वाणी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी॥
रामकथारसाह्लादे रामभद्रप्रसन्नधीः।
देवारण्य सतां संघे जायतां शुभदर्शनः॥

रामभद्र प्रबोधेन भक्तभाग्य प्रवर्धिनी।
कथानन्दमयी रम्या रामानन्द निबन्धिनी॥
रामभद्रप्रसादेन व्यासेनार्थ प्रियाध्रुवम्।
भूयाद् भक्तिमयी गंगा पैकवली सुसङ्गमा॥

□□□

गतांक से आगे

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(१२) कई व्यक्ति ऊपर कहे पक्ष की सिद्धयर्थ 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' (यजुः १७/४८) यहां 'विशिखा इव' का 'विगतशिखाः-शिखाहीनाः' अर्थ करके अपने इष्ट पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं, यह ठीक नहीं। इस मन्त्र में ग्रीष्ममूलक उष्णता के कारण शिखा कटवाना अथवा शीत होने से शिखा रखवाना नहीं कहा गया। यहाँ विशेषण 'कुमार' है, तो क्या बड़ों को गर्मी नहीं लगती? तब उनका यह प्रमाण-प्रदर्शन व्यर्थ है। क्योंकि इससे उस पक्ष की सिद्धि नहीं।

वस्तुतः उक्त मंत्र में 'विशिखाः का विशेष्य कुमाराः' है, 'ग्रीष्मखिन्ना नराः' नहीं। उसका एक अर्थ है 'विविधशिखावन्तः'। कुमारावस्था में कई अपने प्रवरानुसार पाँच शिखा या तीन शिखा रखते हैं, जैसे कि 'प्रयोगरत्न' में कहा है- 'मध्ये शिरसि चूड़ा स्याद् वासिष्ठानां तु दक्षिणे। उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता'। 'माधवीय में भी ऐसा ही कहा है। आपरतन्त्र में भी इसी प्रकार कहा है- 'तूष्णीं केशान् विनीय यथार्थं शिखाः निदधाति' (आप.गृ.१६-१५) तथा ऋषिप्रवर-संख्यया। 'अथैनमेकशिखस्त्रिशिखः पञ्चशिखो वा यथा वा एषां कुलधर्मः स्यात् यथपिं शिखां निदधाति।' (बोधा० गृ० २।४।१७-१८) 'संस्कारभास्कर' में भी कहा है- 'दक्षिणतः चूडा वसिष्ठानाम्' (४०।२) 'उभयतोऽत्रिकश्यपानाम्' (३) 'पञ्चचूडा अङ्गिरसः' (५)। स्वा० दयानन्दजी ने भी अपनी 'संस्कारविधि' में लिखा है- '(चूड़ाकर्म में)

पाँचों ओर थोड़ा-थोड़ा केश रखावे' (७६ पृष्ठ)। अपने यजुर्वेदभाष्य में भी स्वामी जी ने लिखा है- 'यथा विगत शिखा विविधशिखा या, बिना चोटी के वा बहुत चोटियोंवाले बालकों के समान बाणा आदि शस्त्र-अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं'। इस प्रकार 'विशिखाः' का 'विविधशिखाः' भी अर्थ हुआ।

चूड़ाकर्म संस्कार में मध्यवाली शिखा को छोड़कर शेष शिखाओं का मुण्डन करा दिया जाता है। इसीलिए 'यज्ञोपवीतविधि' में आता है- 'तासां मध्यशिखावर्जम् उपनयने वपनं कार्यम्'। 'जैमिनिगृह्यसूत्र' में भी कहा है- 'सर्वाणि लोमनखानि वापयेत् शिखावर्जम्' (१।१८) फलतः उन्हीं विविध शिखाओं को सूचित करने वाला उक्त मन्त्र है। यदि यहाँ 'विशिखाः' का 'शिखाहीनाः' अर्थ किया जाय तो उपमानोपमेयभाव घटित नहीं होता। 'विशिखा बाणाः सम्पतन्ति' यह उपमेय वाक्य है, 'विशिखाः कुमाराः सम्पतन्ति' यह उपमान-वाक्य है, बाण शिखाहीन नहीं होते, किन्तु शिखाहीन ही होते हैं। 'शिखा' होती है उनके पंख, तभी तो बाणों की गति तेज हो जाती है। इसी कारण आगे क्रिया है- 'सम्पतन्ति' सम्यक् पतन्ति (खूब उड़ते हैं) शिखा- (पंख) हीन बाणों की सम्पात क्रिया (उड़ना क्रिया) नहीं होती। इससे उक्त मन्त्र से शिखाहीनता सिद्ध नहीं होती। एक प्रश्न होता है कि तब तो 'सशिखा इव' पाठ होता, 'विशिखा इव' क्यों? इस पर उत्तर है कि 'विशिष्टा-गोखुरपरिमाणा शिखा येषाम्' यहाँ 'वि' का

अर्थ 'विशिष्ट' अर्थात् गोखुरपरिमाण वाली शिखा है; अथवा 'वि' का अर्थ 'विविधा: शिखा: येषाम्' यह भी हो सकता है जैसे कि- 'प्रयोगरत्न' आदि के अनुसार पहले दिखाया जा चुका है। अथवा 'शिखाहीनता' का भी अर्थ हो तो वहाँ मध्य की शिखा से भिन्न शिखाओं का राहित्य ही इष्ट है। कौमार्य में उनका मुण्डन हुआ करता है-यह पहले ही कहा जा चुका है। इससे भी उक्त पक्ष (गर्मदेश में शिखा काटने) की सिद्धि नहीं होती।

मीमांसा आदि में तो इसी (कुमारा विशिखा इव) मन्त्र को शिखा स्थापन में मूलक कहा है। जैसे कि- 'मीमांसादर्शन' (१।३।१) सूत्र के भाष्य में शवरस्वामी ने स्पष्ट लिखा है- 'गोत्रचिह्न' शिखाकर्म: दर्शनं च- 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति। 'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। 'कर्तव्यं श्रुतिनोदनात्' (२।३५) इस मनु-पद्य की टीका में कुल्लूकभट्ट ने लिखा है- 'श्रुतिनोदनात्- 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति मन्त्रलिङ्गात्'। यहाँ पर श्रीकुल्लूकभट्ट ने उक्त मन्त्र को शिखास्थापक ही माना है। उक्त पद्य में नारायण नामक टीकाकार ने भी लिखा है- 'श्रुते: मन्त्ररूपायाश्चोदनाया लिङ्गतया प्रवर्तकत्वात्। मन्त्रश्च 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा: विशिखा इव'। यहाँ भी वही बात हुई। यही राघवानन्द ने भी लिखा है- 'श्रुतिनोदनात् -यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति श्रुते:। इस प्रकार 'काठकगृह्यसूत्र' के ४०।१६ सूत्र के व्याख्यान में देवपाल ने भी कहा है- 'श्रुतिमूलकमेतत् कर्म-इति प्रदर्शितम् - 'यत्र बाणा निष्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इत्यादिना।

(१३) अब एक प्रश्न बच जाता है- 'यदि शिखाराहित्य अवैदिक है; तथा 'कुमारा विशिखा इव' में 'विशिष्टशिखा:' वा 'विविधशिखा:' यह अर्थ है; तो यजुर्वेद वाजसनेयी-संहिता के भाष्यकार उबट-महीधर आदि ने इसका 'विगत-शिखा:' वा 'शिखा-हीना:' यह अर्थ क्यों लिखा है? इससे तो शिखाछेदन ही सिद्ध होगा- इस पर यह जानना चाहिये कि- उबट-महीधर के उक्त व्याख्यान से भी उक्त अभिप्राय की सिद्धि नहीं हो सकती। उनके आशय पर भी विचारना चाहिये। वह आशय यह है जैसे शिखाहीन बाण गिर ही जाया करते हैं, लक्ष्यवेध रूप उन्नति नहीं कर सकते; वैसे ही शिखाहीन कुमार ही पतन को प्राप्त करते हैं; उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते। तभी तो कषायरस वाले सोम के पान में अप्रवृत्त होते हुए कुमारों को लोभ भी यही दिया जाता था कि-इसके पीने से तुम्हारी शिखा बढ़ जायगी 'शिखा ते वर्धते वत्स! गुडूचीं श्रद्धया पिब'। इस प्रकार यहाँ 'संपतन्ति का 'सम्यक् पतन्ति अवनतिं प्राप्नुवन्ति' 'अवनति प्राप्त करते हैं' अर्थ होने से 'विशिखा: का 'शिखाहीना:' अर्थ से समन्वय हो जाता है। बात वही हमारी आकर निकली कि-शिखाहीन अवनति को प्राप्त करते हैं। प्रतिपक्षियों की इससे इष्ट-सिद्धि न हुई। इस प्रकार शिखा का धारण उन्नति-क्रिया का साधक सिद्ध हुआ। इसीलिए 'काठकगृह्यसूत्र' (४०।७) में देवपाल ने व्याख्या की है- 'निःशिखत्वं तु अमङ्गलधर्मोऽरिष्टहेतुः। तथा च पठन्ति- 'अमेध्यमेतत् शिरोऽशिखम् , यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इति निन्दावादः। इससे हमारा अभिप्राय ही पुष्ट हुआ।

क्रमशः.....

कालिका दशकम्

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

विराजमानामलमुण्डमालिकां
कृपालुचित्तां हिमशैल बालिकाम्।
प्रपन्नभक्तालि वरूथपालिकां
त्रिलोकवन्द्यां प्रणमामि कालिकाम्॥१॥

प्रचण्ड पञ्चास्य शुभासनास्थितां
महाबलां वर्धित भक्त वैभवाम्।
भवोद्भवां भावितभाववल्लभाम्
सुरेन्द्रवन्द्यां प्रणमामिकालिकाम्॥२॥

निसर्गनीलोत्पलदामवर्चसं
स्वभक्ततोषार्थं समिद्धतेजसम्।
प्रचण्डकालानल कोटिभीषणां
दुरन्तसत्त्वां प्रणमामि कालिकाम्॥३॥

महेन्द्रपूज्यां विवुधैरभिष्टुतां
निपीत दैत्येन्द्र शरीर शोणिताम्।
त्रिशूलनिर्मूलित शूल संहतिं
कृपालु सत्त्वां प्रणमामि कालिकाम्॥४॥

श्रुतिप्रतिष्ठा दनुजेन्द्रमर्दिनीम्
स्मृतिप्रणम्यां प्रणतार्तिनाशिनीम्।
स्वखड्गसम्मर्दितरक्तबीजकां
महाकरालां प्रणमामि कालिकाम्॥५॥

अगाधवीर्याम्बुधि भीषणोच्छल-
त्तरङ्गमालार्दित दैत्यकुञ्जराम्।

प्रचण्डवक्त्राग्नि निदग्धदानवां
जगत्प्रणम्यां प्रणमामि कालिकाम्॥६॥

समुण्डमालां गणनीय गौरवां
सदाप्रपन्नार्दित घोर सैरवाम्।
निमग्नशूलाम्बुधि रक्तबीजकाम्
तमालवर्णां प्रणमामि कालिकाम्॥७॥

महानुभावां तरलांतपस्विनीं
हरप्रसादां तरुणीं तरस्विनीम्।
सदादिशक्तिं जननीं च तामसीम्
तमोनिहन्त्रीं प्रणमामि कालिकाम्॥८॥

त्रिताप पापापहहासशालिनीं
महायुधां तर्जित राक्षसाधमाम्।
सुपीठसंस्थां यमुनाजलप्लुतां
सरोजनेत्रां प्रणमामि कालिकाम्॥९॥

नवाम्बुदाभां भवभामिनीमहं
प्रचण्डहुंकारयुतां खलार्दिनीम्।
स्वभक्तकामप्रद कामधुगवीम्
दशेद्यदोषं प्रणमामि कालिकाम्॥१०॥

श्रीरामभद्राचार्येण कालिका दशकं मुदा।
गीतं सुरेन्द्र संतुष्ट्यै भूयान्मोदाय वै सताम्॥

□□□

समदर्शी बनो समवर्ती नहीं

□ परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज

(वे सन्त-महापुरुष-आप्तपुरुष धन्य हैं जिनके चिन्तन-मनन-लेखन-दर्शन से जनमानस की बुद्धि भगवान के नाम-रूप-लीला-धाम के श्रवण तथा दर्शन में लगकर मनुष्य जीवन को कृतार्थ बना देती है। ऐसे ही महापुरुषों में परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी का नाम विश्वविख्यात है। प्रस्तुत हैं आपके अमृत वचन, जिनसे पाठक को तत्त्वदर्शन के ज्ञान का सुअवसर तो प्राप्त होगा ही उसके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन भी आ सकता है।)

-प्रधान सम्पादक

आजकल समता पर विशेष चर्चा चल रही है। सबके साथ समता का बर्ताव करो-ऐसा प्रचार किया जा रहा है। परन्तु वास्तव में समता किसे कहते हैं और वह कब आती है-इसे समझने की बड़ी आवश्यकता है।

समता कोई खेल-तमाशा नहीं है, प्रत्युत परमात्मा का साक्षात् स्वरूप है। जिनका मन समता में स्थित हो जाता है, वे यहाँ जीते जी ही संसार पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और परब्रह्म परमात्मा का अनुभव कर लेते हैं*। यह समता तब आती है, जब दूसरों का दुःख अपना दुःख और दूसरों का सुख अपना सुख हो जाता है। गीता में भगवान् कहते हैं-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६/३२)

‘हे अर्जुन! जो पुरुष अपने शरीर की तरह सब जगह सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब जगह सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।’

जैसे शरीर के किसी भी अङ्ग में पीड़ा होने पर उसके दूर करने की लगन लग जाती है, ऐसे ही किसी प्राणी को दुःख, सन्ताप आदि होने पर उसको दूर करने की लगन लग जाय, तब समता आती है। सन्तों के लक्षणों में भी आया है-

‘पर दुख दुख सुख सुख देखे पर’॥

(मानस ७/३८/१)

जब तक अपने सुख की लालसा है, तब तक चाहे जितना उद्योग कर लें, समता नहीं आयेगी। परन्तु जब हृदय से यह लगन लग जायगी कि दूसरों को सुख कैसे पहुँचे? उसको आराम कैसे हो? उनको लाभ कैसे हो? उनका कल्याण कैसे हो? तब समता स्वतः आ जायगी। इसका आरम्भ सर्वप्रथम अपने घर से करना चाहिये। हृदय में ऐसा भाव हो कि किसी को किञ्चिन्मात्र भी दुःख या कष्ट न पहुँचे, किसी का कभी अनिष्ट न हो। चाहे मैं कितना ही कष्ट पाऊँ पर मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई आदि को सुख होना चाहिये। घरवालों को सुख पहुँचाने से अपने हृदय में शान्ति आयेगी ही। जहाँ अपने घर का भी सम्बन्ध नहीं है, वहाँ सुख पहुँचायेंगे तो विशेष आनन्द की लहरें आने लग जाएंगी। परन्तु ममतापूर्वक

* इहैप तैर्जितः सर्गो येषं साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्माणि ते स्थिताः॥

(गीता ५/१९)

सुख पहुँचाने से हमारी उन्नति नहीं होगी। जहाँ हमारी ममता न हो, वहाँ सुख पहुँचाये अथवा जहाँ हम ममतापूर्वक सुख पहुँचाते हैं, वहाँ से अपनी ममता हटा लें-दोनों का परिणाम एक ही होगा।

चित्रकूट में लक्ष्मण जी भगवान् राम और सीता जी की सेवा कैसे करते हैं, यह बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि।

जिमि अबिबेकी पुरुष शरीरहि।।

(मानस २/१४२/१)

अर्थात् लक्ष्मण जी भगवान् राम और सीता जी की वैसे ही सेवा करते हैं, जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीर की सेवा करता है। अपने शरीर की सेवा करना, उसे सुख पहुँचाना समझदारी नहीं है। अपने शरीर की सेवा तो पशु भी करते हैं। जैसे, बँदरी की अपने बच्चे पर इतनी ममता रहती है कि उसके मरने के बाद भी वह उसके शरीर को पकड़े हुए चलती है, छोड़ती नहीं। परन्तु जब कोई वस्तु खाने के लिये मिल जाती है, तब वह स्वयं तो खा लेती है पर बच्चे को नहीं खाने देती। बच्चा खाने की चेष्टा करता है तो उसे ऐसी घुड़की मारती है कि वह चीं-चीं करते भाग जाता है। अतः ममता के रहते हुए समता का आना असम्भव है।

जिससे हमें कुछ लेना नहीं है, जिससे हमारा कोई स्वार्थ नहीं है, ऐसे व्यक्ति के साथ भी हम प्रेमपूर्वक अच्छा-से-अच्छा बर्ताव करें, जिससे उसका हित हो। कोई व्यक्ति मार्ग में भटक गया है, उसे मार्ग का पता नहीं है और वह हमसे पूछता है। हम उसे बड़ी प्रसन्नता से मार्ग बतायें अथवा कुछ दूर तक उसके साथ चलें तो हमें हृदय में प्रत्यक्ष सुख का, शान्ति का अनुभव होगा। परन्तु यदि हम जानते हुए

भी उसे मार्ग नहीं बतायेंगे तो हमारे हृदय में सुख नहीं होगा। यह अनुभव की बात है, कोई करके देख ले। किसी को प्यास लगी है तो उसे बता दे कि भाई, इधर आओ, इधर ठण्डा जल है। फिर हम अपना हृदय देखें। हमारे हृदय में प्रसन्नता आयेगी, सुख आयेगा। यह सुख हमारा कल्याण करने वाला है। दूसरा दुःख पाये पर मैं सुख ले लूँ- यह सुख पतन करने वाला है। इससे न तो व्यवहार में हमारी उन्नति होगी और न परमार्थ में। हम सत्सङ्ग का आयोजन करते हैं। उसमें आने वाले व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था करते हैं तो उनसे प्रेमपूर्वक कहें कि आइये, यहाँ बैठिये। उन्हें वहाँ बैठाये, जहाँ से वे ठीक तरह से सुन सकें। वे आराम से कैसे बैठ सकें? ठीक तरह से कैसे सुन सकें-ऐसा भाव रखकर उनसे बर्ताव करें। ऐसा करने से हमारे हृदय में प्रत्यक्ष शान्ति आयेगी। पर वहीं हुक्म चलायें कि क्या करते हो? इधर बैठो, इधर नहीं तो बात वही होने पर भी हृदय में शान्ति नहीं आयेगी। भीतर में जो अभिमान है, वह दूसरों को चुभेगा, बुरा लगेगा। ऐसा बर्ताव करें और चाहें कि समता आ जाय तो वह कभी आयेगी नहीं।

सबके हित में जिसकी प्रीति हो गयी है, उन्हें भगवान् प्राप्त हो जाते हैं- 'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः' (गीता १२।४)। कारण कि भगवान् प्राणिमात्र के परम सुहृद हैं (गीता ५।२९) वे प्राणिमात्र का पालन-पोषण करने वाले हैं। आस्तिक-से-आस्तिक हो अथवा नास्तिक-से-नास्तिक, दोनों के लिये भगवान् का विधान बराबर है। एक व्यक्ति बड़ा आस्तिक है, भगवान् को बहुत मानता है और उन्हें पाने के लिये साधन-भजन करता है और एक व्यक्ति ऐसा नास्तिक है कि संसार से भगवान् का खाता उठा देना चाहता है। भगवान् को मानने से और

भगवान् के कारण ही दुनिया दुःख पा रही है, भगवान् नाम की कोई चीज है ही नहीं-ऐसा उसके हृदय में भाव है और ऐसा ही प्रचार करता है। ऐसे नास्तिक-से-नास्तिक व्यक्ति की भी प्यास जल मिटाता है और यह जल आस्तिक-से-आस्तिक व्यक्ति की भी प्यास मिटाता है। जल में यह भेद नहीं है कि वह आस्तिक की प्यास ठीक तरह से शान्त करे और नास्तिक की प्यास शान्त न करे। वह समान रीति से सबकी प्यास मिटाता है। ऐसे ही सूर्य समान रीति से सबको प्रकाश देता है, हवा समान रीति से सबको श्वास लेने देती है, पृथ्वी समान रीति से सबको रहने का स्थान देती है। इस प्रकार भगवान् की रची हुई प्रत्येक वस्तु सबको समान रीति से मिलती है।

समता का अर्थ यह नहीं है कि समान रीति से सबके साथ रोटी-बेटी (भोजन और विवाह) का बर्ताव करें। व्यवहार में समता तो महान् पतन करने वाली चीज है। समान बर्ताव यमराज का, मौत का नाम है; क्योंकि उसके बर्ताव में विषमता नहीं होती। चाहे महात्मा हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे साधु हो, चाहे पशु हो, चाहे देवता हो, मौत सबकी बराबर होती है। इसलिये यमराज को 'समवर्ती' (समान बर्ताव करने वाला) कहा गया है *। अतः जो समान बर्ताव करते हैं, वे भी यमराज हैं।

पशुओं में भी समान बर्ताव पाया जाता है। कुत्ता ब्राह्मण की रसोई में जाता है तो पैर धोकर नहीं जाता। ब्राह्मण की रसोई हो अथवा हरिजन की, वह तो जैसा है, वैसा ही चला जाता है; क्योंकि यह उसकी समता है। पर मनुष्य के लिये यह समता नहीं है, प्रत्युत महान् है। समता तो यह है कि दूसरे का दुःख कैसे

मिटे, दूसरे को सुख कैसे हो, आराम कैसे हो, ऐसी समता रखते हुए बर्ताव में पवित्रता, निर्मलता रखनी चाहिये। बर्ताव में पवित्रता रखने से अन्तःकरण पवित्र, निर्मल होता है। परंतु बर्ताव में अपवित्रता रखने से, खान-पान आदि एक करने से अन्तःकरण में अपवित्रता आती है, जिससे अशान्ति बढ़ती है। केवल बाहर का बर्ताव समान रखना शास्त्र और समाज की मर्यादा के विरुद्ध है। इससे समाज में संघर्ष पैदा होता है।

वर्णों में ऊँचे हैं और शूद्र नीचे हैं-ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं है। ब्राह्मण उपदेश के द्वारा, क्षत्रिय रक्षा के द्वारा, वैश्य धन-सम्पत्ति, आवश्यक वस्तुओं के द्वारा और शूद्र शरीर से परिश्रम करके सभी वर्णों की सेवा करें। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे अपने कर्तव्य-पालन में परिश्रम न करें। प्रत्युत अपने कर्तव्य -पालन में समान रीति से सभी परिश्रम करें। जिसके पास जिस प्रकार की शक्ति, विद्या, वस्तु, कला आदि है, उसके द्वारा चारों ही वर्ण चारों वर्णों की सेवा करें, उनके कार्यों में सहायक बनें। परन्तु चारों वर्णों की सेवा करने में भेदभाव न रखें।

आजकल वर्णाश्रम को मिटाकर पार्टीबाजी हो रही है। आज वर्णाश्रम में इतनी लड़ाई नहीं है, जितनी लड़ाई पार्टीबाजी में हो रही है-यह प्रत्यक्ष बात है। पहले लोग चारों वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में चलते थे और सुख-शान्तिपूर्वक रहते थे। आज वर्णाश्रम की मर्यादा को मिटाकर अनेक पार्टियाँ बनायी जा रही है, जिससे संघर्ष को बढ़ावा मिल रहा है। गाँवों में सब लोगों को पानी मिलना कठिन हो रहा है। जिसके अधिकार में कुआँ है, वे कहते हैं कि

* 'समवर्ती परेतर्दा' (अमरकोष १।१।५८)

कि तुमने उस पार्टी को वोट दिया है, इसलिये तुम यहाँ से पानी नहीं भर सकते। माँ, बाप और बेटा-तीनों अलग-अलग पार्टियों को वोट देते हैं और घर में लड़ते हैं। भीतर में वैर बाँध लिया कि तुम उस पार्टी के और हम इस पार्टी के। कितना महान् अनर्थ हो रहा है!

यदि समता लानी हो तो दूसरा व्यक्ति किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय, मत आदि का क्यों न हो, उसे सुख देना है, उसका दुःख दूर करना है और उसका वास्तविक हित करना है। उसमें यह भेद हो सकता है कि आप राम-राम कहते हैं, हम कृष्ण-कृष्ण कहेंगे; आप वैष्णव हैं, हम शैव हैं, आप मुसलमान हैं, हम हिन्दू हैं, इत्यादि। परन्तु इससे कोई बाधा नहीं आती है। बाधा तब आती है, जब यह भाव रहता है कि वे हमारी पार्टी के नहीं हैं, इसलिये उनको चाहे दुःख होता रहे पर हमें और हमारी पार्टी वालों को सुख हो जाय। यह भाव महान् पतन करने वाला है। इसलिये कभी किसी वर्ण आदि के मनुष्यों को कष्ट हो तो उनके हित की चिन्ता समान रीति से होनी चाहिये और उन्हें सुख हो तो उससे प्रसन्नता समान रीति से होनी चाहिये। जैसे, ब्राह्मणों और हरिजनों में संघर्ष हुआ। उसमें हरिजनों की हार और ब्राह्मणों की जीत होने पर हमारे मन में प्रसन्नता हो अथवा ब्राह्मणों की हार और हरिजनों की जीत होने पर हमारे मन में दुःख हो तो यह विषमता है, जो बहुत हानिकारक है। ब्राह्मणों और हरिजनों-दोनों के प्रति ही हमारे मन में हित की समान भावना होनी चाहिये। किसी का भी अहित हमें सहन न हो। किसी का भी दुःख हमें समान रीति से खटकना

चाहिए यदि ब्राह्मण दुःखी है तो उसे सुख पहुँचायें और यदि हरिजन दुःखी है तो उसे सुख न पहुँचायें-ऐसा पक्षपात नहीं होना चाहिये, प्रत्युत हरिजन को सुख पहुँचाने की विशेष चेष्टा होनी चाहिये। हरिजनों को सुख पहुँचाने की चेष्टा करते हुए भी ब्राह्मणों के दुःख की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। इस प्रकार किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि को लेकर पक्षपात नहीं होना चाहिये। सभी के प्रति समान रीति से हित का बर्ताव होना चाहिये। यदि कोई निम्नवर्ग है और उसे हम ऊँचा उठाना चाहते हों तो उस वर्ग के लोगों के भावों और आचरणों को शुद्ध और श्रेष्ठ बनाना चाहिये; उनके पास वस्तुओं की कमी हो तो उसकी पूर्ति करनी चाहिये; उनकी सहायता करनी चाहिये; परन्तु उन्हें उकसाकर उनके हृदयों में दूसरे वर्ग के प्रति ईर्ष्या और द्वेष के भाव भर देना अत्यन्त ही अहितकर, घातक है तथा लोक-परलोक में पतन करने वाला है। कारण कि ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आदि मनुष्य का महान् पतन करने वाले हैं। यदि ऐसे भाव ब्राह्मणों में हैं तो उनका भी पतन होगा और हरिजनों में है तो उनका भी पतन होगा। उत्थान तो सद्भावों, सद्गुणों, सदाचारों से ही होता है।

भोजन, वस्त्र, मकान आदि निर्वाह की वस्तुओं की जिनके पास कमी है, उन्हें ये वस्तुएँ विशेषता से देनी चाहिये, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि के क्यों न हों। सबका जीवन-यापन सुखपूर्वक होना चाहिये। सभी सुखी हों, सभी नीरोगी हों, सभी का हित हो, कभी किसी को किञ्चिन्मात्र भी दुःख न हो * - ऐसा भाव रखते हुए यथायोग्य

* सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्यभवेत्॥

बर्ताव करना ही समता है, जो सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये हितकर है।

गीता में भगवान् कहते हैं-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(५।१८)

‘ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा को देखने वाले होते हैं।’

ब्राह्मण और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में व्यवहार की विषमता अनिवार्य है। इनमें समान बर्ताव शास्त्र भी नहीं कहता, उचित भी नहीं और कर सकते भी नहीं। जैसे पूजन विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण का ही हो सकता है न कि चाण्डाल का; दूध गाय का ही पीया जाता है, न कि कुतिया का; सवारी हाथी की ही हो सकती है न कि कुत्ते की। इन पाँचों प्राणियों का उदाहरण देकर भगवान् मानो यह कह रहे हैं कि इनमें व्यवहार की समता सम्भव न होने पर भी तत्त्वतः सबमें एक ही परमात्मतत्त्व परिपूर्ण है। महापुरुषों की दृष्टि उस परमात्मतत्त्व पर ही सदा-सर्वदा रहती है। इसलिये उनकी दृष्टि कभी विषम नहीं होती।

यहाँ एक शङ्का हो सकती है कि दृष्टि विषम हुए बिना व्यवहार में भिन्नता कैसे होगी? इसका समाधान यह है कि अपने शरीर के अङ्गों- (मस्तक, पैर, हाथ, गुदा आदि) में हमारी दृष्टि अर्थात् अपनेपन और हित की भावना समान रहती है, फिर भी हम उनके व्यवहार में भेद रखते हैं; जैसे-किसी को पैर

लग जाय तो क्षमा-याचना करते हैं पर किसी को हाथ लग जाय तो क्षमा-याचना नहीं करते। प्रणाम मस्तक और हाथों से करते हैं, पैरों से नहीं। गुदा से हाथ लगने पर हाथ धोते हैं, हाथ से हाथ लगने पर नहीं। इतना ही नहीं एक हाथ की अंगुलियों में भी व्यवहार में भेद रहता है। किसी को तर्जनी अंगुली दिखाने और अँगूठा दिखाने का भेद तो सब जानते ही हैं। इस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों के व्यवहार में तो भेद होता है पर आत्मीयता में भेद नहीं होता। इसलिये शरीर के किसी भी पीड़ित अङ्ग की उपेक्षा नहीं होती। व्यवहार में भेद होने पर भी पीड़ा मिटाने में हम समानता का व्यवहार करते हैं। शरीर के सभी अङ्गों के सुख-दुःख में हमारा एक ही भाव रहता है। इसी प्रकार प्राणियों में खान-पान, गुण, आचरण, जाति आदि का भेद होने से उनके साथ ज्ञानी महापुरुषों के व्यवहार में भी भेद होता है और होना भी चाहिये। परंतु उन सब प्राणियों में एक ही परमात्मतत्त्व परिपूर्ण होने के कारण महापुरुष की दृष्टि में भेद नहीं होता। उन प्राणियों के प्रति महापुरुष की आत्मीयता, प्रेम, हित, दया आदि के भाव में कभी फरक नहीं पड़ता। उनके अन्तःकरण में राग-द्वेष, ममता, आसक्ति, अभिमान, पक्षपात, विषमता आदि का सर्वथा अभाव होता है। जैसे अपने शरीर के किसी अङ्ग का दुःख दूर करने की चेष्टा स्वाभाविक होती है, वैसे ही पता लगने पर दूसरे प्राणी का दुःख दूर करने की और उसे सुख पहुँचाने की चेष्टा भी उनके द्वारा स्वाभाविक होती है। यही कारण है कि भगवान् ने यहाँ महापुरुषों को समदर्शी कहा है, न कि समवर्ती।

□□□

यह दाग मिटाना ही होगा

प्रस्तुति-डा० उन्मेष 'राघवीय'

सारा नभ मंडल डोल उठा
गौओं की करुण पुकारों से।
धरती की छाती दहल उठी
नित बढ़ते अत्याचारों से॥१॥
जो बीत रही गोमाता पर
वह ऐसी करुण कहानी है।
जो उबल नहीं पड़ता सुनकर
वह खून नहीं है पानी है॥२॥
गो मान बिन्दु है भारत का
यह रक्षक भी है पालक भी।
यह धन का है भण्डार अथक
यह जन-जीवन संचालक भी॥३॥
इसकी रक्षा से आँख मूंद
जो अब तक पाप कमाया है।
उसने भारत को गारतकर
इस हालत में पहुँचाया है॥४॥
तुम कैसे जनता के सेवक
जब जनमत को ठुकराते हो।
जब गो रक्षा की बात चले
तब लोगों को बहकाते हो॥५॥
चोले में आज अहिंसा के
छिप गया माँस व्यापारी है।
मुर्गी मछली पाली जाती
गौओं की हत्या जारी है॥६॥

उस गोपालक की धरती पर
बूचड़ खाने खुलवाते हो।
बनकर गाँधी के अनुयायी
तुम तनिक नहीं शर्माते हो॥७॥
जिस गोमाता की रक्षाकेहित
कूकाओं ने बलिदान किया।
उस गो माता की रक्षा के हित
अब सन्तों ने आह्वान किया॥८॥
अब समय यही है चेतो तुम
इस जनमत का सम्मान करो।
मत खेलो फाग लहू के तुम
मत सत्ता पर अभिमान करो॥९॥
जन-रोष अगर ज्वाला बनकर
उत्तप्त उरों से फूटेगा।
तो अभिमन्यू बनकर जन-जन
पापों के गढ़ पर टूटेगा॥१०॥
जिस कुर्सी से है प्यार तुम्हें
यह पाप उसे ले डूबेगा।
ऐसा विप्लव हो जायेगा
जो आप उसे ले डूबेगा॥११॥
अब तुमको गोबध-बन्दी का
कानून बनाना ही होगा।
है दाग देश के माथे पर
यह दाग मिटाना ही होगा॥१२॥

□□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

आषाढ़ शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वादशी	शनिवार	अनुराधा	4 जुलाई	शनि प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	रविवार	ज्येष्ठा	5 जुलाई	—
चतुर्दशी	सोमवार	मूल	6 जुलाई	श्रीसत्यनारायणव्रत
पूर्णिमा	मंगलवार	पू०षा०	7 जुलाई	श्रीगुरुपूर्णिमा श्रीव्यास पूजा

श्रावण कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	बुधवार	उ०षा०	8 जुलाई	—
द्वितीया	गुरुवार	श्रवण	9 जुलाई	अशून्य शयन प्रारम्भ
तृतीया	शुक्रवार	श्रवण	10 जुलाई	पंचक रात 9/12 से प्रारम्भ
चतुर्थी	शनिवार	धनिष्ठा	11 जुलाई	श्री गणेश चतुर्थी व्रत
पंचमी	रविवार	शतभिषा	12 जुलाई	—
षष्ठी	सोमवार	पू०भा०	13 जुलाई	श्रावण सोमवार व्रत
सप्तमी	मंगलवार	उ०भा०	14 जुलाई	शीतला सप्तमी
अष्टमी	बुधवार	रेवती	15 जुलाई	पंचक समाप्त 5/9 सायं
नवमी	गुरुवार	अश्विनी	16 जुलाई	कर्क अर्कः संक्रान्ति श्रावण मास
दशमी	शुक्रवार	भरणी	17 जुलाई	—
एकादशी	शनिवार	कृतिका	18 जुलाई	कामदा एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	रविवार	रोहिणी	19 जुलाई	प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	सोमवार	मृगाशिरा	20 जुलाई	—
चतुर्दशी	मंगलवार	आर्द्रा/पुनर्वसु	21 जुलाई	पितृकार्य अमावस्या
अमावस्या	बुधवार	पुष्य	22 जुलाई	हरियाली अमावस्या सूर्यग्रहण प्रातः 5/33 से 7/25 तक

श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वितीया	गुरुवार	श्लेषा	23 जुलाई	चन्द्रदर्शनम्
तृतीया	शुक्रवार	मघा	24 जुलाई	संधारा तीज
चतुर्थी	शनिवार	पू०फा०	25 जुलाई	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
पंचमी	रविवार	उ०फा०	26 जुलाई	नाग पंचमी
षष्ठी	सोमवार	हस्त	27 जुलाई	—
सप्तमी	मंगलवार	चित्रा	28 जुलाई	गोस्वामी श्रीतुलसीदास जयन्ती
अष्टमी	बुधवार	स्वाति	29 जुलाई	श्रीदुर्गाष्टमी व्रत
नवमी	गुरुवार	विशाखा	30 जुलाई	—
दशमी	शुक्रवार	अनुराधा	31 जुलाई	—
एकादशी	शनिवार	ज्येष्ठा	1 अगस्त	पुत्रदा एकादशी व्रत (सबका)